श्रीमान् महाराज जार्ज और श्रीमती महारानी मेरी।
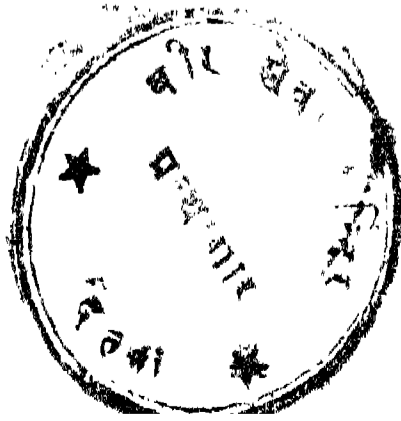
गृहलक्ष्मी

"स्वाम्प्रसूतिञ्चरित्रञ्च कुलमात्मानमेव च ।
स्व ञ्च धर्मम्प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति ।"—मनुः
"सा पत्नी या विनीता स्याच्चित्तज्ञा वशवर्तिनी ।
अनुकूला न वाग्दुष्टा दक्षा साध्वी पतिव्रता ।
एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संशयः" ॥—दक्षसंहिता

द्वितीय वर्ष] प्रयाग, माघ, सम्वत् १९६८ [ग्यारहवाँ दर्शन

श्री जॉर्ज-वन्दना

जय जय पंचम जॉर्ज आर्ज अवनीस हमारे
जयति सेत-कुल-केतु जयति इँगलेंड उज्यारे
जयति मनुज-कुल-दया-द्रवित, दुखियन-दुख-भंजन
जय भारत-निज-प्रजा-प्रनय-भाजन, जन-रंजन
जय ब्रिटिश-पुरातन-वीरता-विदित-हनोवर-वंसधर
जय विक्टोर्या-प्रिय-तनुज-श्री-एडवर्ड-नृप-तनय वर

जय उनीस-दस-एक, सुभग अभिसेक-अब्द वर
अमित अनून-अनन्द-जून, जय जून दिसम्बर
जय जय राज-समाज आज सजि साज इकत्रित
उमड़्यौ प्रबल उमंग-स्रोत, प्रभु-अभिनन्दन हित
लखि नन्दन-छवि नन्दन लज्जित, इंद्रप्रस्थ लखि इन्द्रपुरि
जय अलख-पूर्व-भूस्वर्ग-कर, सुर-निसर्ग, नृपवर्ग-धुरि

तुम दरसन लहि आज सफल दृग भये हमारे
आनँद-अस्रु नहाय रहे नैनन के तारे
धर्म, जाति कौ अन्तर हम नृप में नहिँ मानत
अपनाए हैं, अपनाएहि अपनौ हि करि जानत

सो आगत ह्वै तुम ह्याँ अहो ! इन नैनन-मग पग धरहु
लहि स्वागत पूरन प्रनय कौ अपनाएन अपने करहु

बंग-विभाग मिटाय अमिट अनुराग बढ़ायौ
घर घर सुख-संतोस-सुधा-बारिद बरसायौ
सैनिक जन-सनमान-प्रथा कछु उन्नत कीनी
देसिनु पदक-विसेस-प्राप्ति-हित छमता दीनी

जय सब महँ सम-ममता-प्रनय प्रगटि प्रजा-मन-मुग्ध-कर
जय सतत सुभग-सासन-निरत, जग प्रसिद्ध नीतिज्ञ वर

जय विस्तुत-विद्वान-मान-मर्यादा-कारक
पद-धारिन पद-वृत्ति-दान-नव-नम-प्रचारक
जय दिल्ली निज नवल राजधानी निर्धारित
जयति सहस-सुभकाज-सुजस-बल्ली-विस्तारित

जय सुरथल सम भूतल कियौ सकल-सुलभ-संपति-भरित
जय जलपति, थलपति, व्योमपति, जयति सोम-सुरपति-चरित

जॉर्ज ! तुम्हारे राज आर्जमा कबहुँ न अँथवत
मानहुँ रच्छा करन काज, हित सों रहे चितवत
सुनियत सूरज अंस रह्यौ रज-पूतन माहीं
पै प्रताप रवि कियौ राज उनके इमि नाहीं

जय रवि-ससि-गुन-गुम्फित, सुदृढ़, सोहत सुभग सुराज-थिति
जय कल-कीरति-चय-चंद्रिका छिटकि, छटा छहराति छिति

जय जय पुनि सम्राट-प्रिया महारानी मेरी
सुन्दर जनु सुरबाल, सुघर-गुन-माल-सुमेरी
रही ललकि जिहि लखन प्रजा करि चाह घनेरी
सुखित भई अवलोकि प्रेममय मूरति तेरी

जय भारतीय-तिय-गन-सखी, प्रिय-सनेह-सानी सदय
जय तिय-समाज-हित उनमुखी, श्रीमेरी महरानि जय !

जय जय जुग जुग जियहु जुगल दंपति प्रिय जोरी
प्रजा प्रनय-प्रन-पगी, बढ़हु सासन सुचि डोरी
सफल होयँ संकल्प सकल सुभ, जीवन केरे
मानव-मंगल-जननि जुगल अभिलासा-प्रेरे

जय दिन दिन दुगुनित होय सो अभिलासा आसा प्रबल
जुग जुगनु जॉर्ज मेरी जियहु, सुख-सुहाग जोरी जुगल !

—श्रीधर पाठक

अबला-अपील

(तोमर छन्द)

हे प्रणत पाल दयाल । कछु कहब निज दुख-साल ॥
सुनि दीजिये लघु ध्यान । तुम बिन और ठिकान ॥
हम नारि अति बल हीन । बिधि नाम अबला कीन ॥
स्वाधीनता अधिकार । नहिं मिलेहु प्रभु नव द्वार ॥
जग प्रकृति दुस्तर भार । सिर धरेउ अतिहि अपार ॥
पुनि आय जन्मीं तहाँ । है भूमि भारत जहाँ ॥
जेहि देस की अस रीति । कछु काल तें बिपरीति ॥
बनि नीच अबुध निकाम । रहतीं अनादृत बाम ॥
दै मुनिन को परमान । यहि भाँति कहत अजान ॥
नारी नरक की खान । इनको तजे कल्यान ॥
इनको करै विस्वास । सो लहै जग बहु त्रास ॥
जो अमिय जानि लुभाहिं । तो पाय बिष मरि जाहिं ॥
पसु ढोल सुद्र गँवार । तिय ताड़ना अधिकार ॥
यहि झूठ तें बिस्तार । केहि भाँति पाव गँवार ॥
कर्दम, पराशर, च्यवन । साण्डील, शृङ्गी, जवन ॥
मुनि व्यास जग विख्यात । सब कहत हरि साक्षात ॥
अत्री, वसिष्ठ, कणाद । भृगु, गर्ग, गौतम आदि ॥
रहे कौन मुनि बिनु नार । जिन कियो नहिं तिय प्यार ॥
नहि नारि होतीं भौन । मुनि वृन्द जननी कौन ॥
जेहि भवन नहि तिय बास । सब कहत प्रेत निवास ॥
श्रुति बार बार पुकार । अस कहति निज मति सार ॥
तिय सुभग फलदातार । कामार्थ धर्म विचार ॥
जेहि भवन भामिनि वृन्द । आदर न पाव अनिन्द ॥
तहँ विदित तीनों ताप । कुपि देति लक्ष्मी शाप ॥
तेहि तियन को अपमान । निगमागमै न प्रमान ॥

यह नई रीति अनीति। मुनि मत न श्रुति नहिँ नीति॥
अति कुबुध मूरख लाग। निज मति रची यह ढाँग॥
निन्दहि तियन दै ताम। निज दोष नहिँ पहिचान॥
रखि तियन को तम माहिँ। विद्या पढ़ावत नाहिँ॥
गुन ज्ञान धर्म सुनीत। मन बुद्धि करहिँ पुनीत॥
तिन की न शिक्षा देहिँ। तिय को, अजस सिर लेहिँ॥
जैसे बँधे घर ढोर। तस नारि हू इक ओर॥
यहि सृष्टि को कुछ हाल। नहिँ जानतीं बहु बाल॥
यहि देस कर का नाम। जन्मीं जहाँ ये बाम॥
पूछहु जो उनसे जाय। मुँह ताकती मुसक्याय॥
श्रुति विदित नारी धर्म। तिन कर न जानहिँ मर्म॥
अस जहाँ अत्याचार। लह कस सुलक्षण नार॥
फिर दोष उन कर कौन। आरोपहीं सठ जौन॥
निज नैन पट्टी बंध। नहिँ देखते खल अंध॥
जहँ नारि शिक्षा रीति। बुध रची जान सुनीति॥
सो देस कैसे आज। जनु विश्व के सरताज॥
सुख, सभ्यता, सत, नीति। धन, धान्य, विभव, विभूति॥
जगमगति चहुँदिश जोति। जस इंद्रपुर में होति॥
प्रभु दीनबंधु दयाल। यहि देस कर अस हाल॥
हम नारि वर्ग समूह। दुख सहत अति प्रत्यूह॥
अजहूँ दया उमगाय। हरि मूढ़ता समुदाय॥
दीजे हृदय अस ज्ञान। जेहि पुरुष होहिँ सुजान॥
पहिचानि अपनी भूल। तजि टेक दुख को मूल॥
निज बालिका प्रियमान। दें तिन्हहिँ विद्या दान॥
अबला सुधार विचार। नित रहैँ हिरदय धार॥
नारी सुधरि जब जाहिँ। नर हू रहैँ सुख माँहिँ॥
नहिँ तो चला यम धाम। भूखण्ड भारत नाम॥
यह मूजिबात अपील। लिखी बैजनाथ वकील॥
नहि मिहनताना लीन्ह। बरु मुफ़्लिसी लिख दीन्ह॥

—बैजनाथ सहाय मुख़ार

पातिव्रत-धर्म्म

बहिनो ! हम लोगों के लिये संसार में सब धर्म्मों से पतिव्रत धर्म्म श्रेष्ठ है। देखने में है तो यह एक मामूली सी बात, पर इस पर विचारना, समझना और निबाहना सहज नहीं। बड़े ही भाग्य से हम लोगों की रूचि इस ओर होती है।

पूर्व जन्म के संस्कार और भाग्य के अतिरिक्त इस ओर रुचि होना और न होना शिक्षा और संगति के अधीन है। कालक्रम से विद्या के अभाव के कारण हम लोगों के लिए इस प्रकार की शिक्षा के मिलने का आज दिन कोई भी पक्का प्रबन्ध नहीं है। शिक्षा दूर रहा, अच्छी पढ़ी लिखी पतिव्रता स्त्रियों की संगति भी मिलना कठिन हो रही है। एक तो चार छः स्त्रियाँ बहुत कम इकट्ठी होती हैं और हों भी तो अपनी अपनी रहन-सहन, खान-पान और दुःख सुख की राम कहानियों से उन्हें फुरसत ही नहीं मिलती कि पुरानी उत्तम उत्तम पुस्तकें एक जगह बैठ कर कभी कभी पढ़ा और विचारा करें। घर बिगाड़ और कुटनियों की आज कल किसी स्थान में कमी नहीं है जिनके कारण आज दिन इस देश में स्त्रियों को लोग विश्वाश और उचित आदर की दृष्टि से कम देखते हैं।

अब जरा सतयुग, त्रेता और द्वापर की ओर दृष्टि डालिये। जिस समय श्री रामचन्द्र और श्री लक्ष्मण जी के सहित श्री जनकनन्दिनी श्री सीता जी बन की शोभा को बढ़ा रही थीं, उस समय शहरों की कौन चलावे, वनों में भी ऋषिपत्नियाँ देवियों, कन्याओं तथा स्त्रियों को योग्य शिक्षा देना अपना कर्तव्य मानती थीं। एक दिन श्री रामचन्द्र जी घूमते घामते अत्रि मुनि के स्थान पर जा पहुँचे। अत्रि जी श्री रामचन्द्र जी से मिल कर बड़े ही प्रसन्न हुए और श्री जानकी जी श्री अनसूया जी के पैरों पड़ कर उनसे भेटीं। श्री अनसूया जी ने श्री सीता जी का उचित आदर सत्कार किया और बड़े ही दिव्य सुन्दर वसन भूषण पहिराये और बोलीं "हे सीता! मैं अब तुझे कुछ नारी-धर्म्म सिखाती हूं, ध्यान देकर सुनो"।

श्री गोस्वामी तुलसीदास जी के मनोहर काव्य से बढ़ कर और क्या लिखा जा सकता है। इस कारण मैं यहाँ पर उनके वचन ज्यों के त्यों ही लिखता हूँ -

मातु पिता भ्राता हितकारी। मित सुखप्रद सुनु राजकुमारी॥
अमित दान भर्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेवन तेही॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपदकाल परिख यहि चारी॥
वृद्ध रोगबश जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किय अपमाना। नारि पाव यमपुर दुख नाना॥
एक धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति-पद प्रेमा॥
जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं। वेद पुराण संत अस कहहीं॥

उत्तम मध्यम नीच लघु, सकल कहउँ समुझाइ।
आगे सुनहिं ते भव तरहिं, सुनहु सोय चित लाइ॥

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम पर पति देखहिं कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥
धर्म बिचार समुझि कुल रहहीं। सो निकृष्ट तिय श्रुति अस कहहीं॥
बिन अवसर भयते रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई॥
पति बंचक पर पति रति करई। रौरव नरक कल्पशत परई॥
छिनु सुख लागि जन्म शतकोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिव्रत धर्म छाड़ि छल गहई॥
पति प्रतिकूल जनमि जहँ जाई। बिधवा होय पाई तरुणाई॥

सहज अपावनि नारि, पति सेवत शुभगति लहहिं।
यश गावत श्रुति चारि, अजहु तुलसिका हरिप्रिया॥

(शेष फिर) —देवव्रता देवी

महिला-महत्व

प्यारी देश-देवियो! आपका यह देश किसी समय सब देशों का शिक्षक था। मनुजी कहते हैं—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

अर्थात् यहाँ के ही अग्रजन्माओं (ब्राह्मणों) से अपने अपने धर्म और कर्त्तव्य की शिक्षा सारे भूमण्डल के मनुष्यों ने पायी है। यह

किसका प्रताप था? शतपथ ब्राह्मण बतलाता है कि 'मातृमान्' —यह केवल उस समय की माताओं की शिक्षा-दीक्षा ही का प्रभाव था जो भारतभूमि से बड़े बड़े विद्वान निकल कर सारे भूमण्डल को अपने अमृतस्वरूपी उपदेशों के साथ साथ माता के महत्व को प्रकाश असंख्य मनुष्यों के हृदय मंदिर को देदीप्यमान कर उसमें शांति देवी का संस्थापन करते थे। देखो! आपका यह वही देश है जिसमें महारानी मदालसा ब्रह्मवादिनी तथा अनुसूया, सीता, सुलभा, गार्गी, सरस्वती, विद्याधरी, लीलावती आदि देवियाँ उत्पन्न हो इस भूमि की भूषणरूपिणी हो गयी हैं। परंतु, हा हतभाग्य भारत! तेरे भाग्य के इस अंतिम यवनिकापतन के होते ही "स्त्री शूद्रौ न धीयतामितिश्रुतेः" का बिगुल बजने लगा, जिस का परिणाम यह हुआ कि जहाँ माताएँ पूज्या सौभाग्यमूर्त्ति समझी जाती थीं, आज उसके स्थान में केवल संतान पैदा करने की मशीन मानी जाने लगीं। आप लोग भाषा रामायण को बड़े प्रेम से पढ़ती होंगी। उसमें आरण्यकाण्ड में श्री रामचंद्र जी और भीलों का सम्वाद अंकित है। इससे आप विचार करें कि आज कल साधारण राज-कर्मचारियों से सम्भाषण करने के लिए शिक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता पड़ती है, पर उन वनवासियों को सम्राट चक्रवर्ती के पुत्र रामचंद्र जी से सम्भाषण करने की रीति नीति की किसने शिक्षा दी? इसका उत्तर निम्नलिखित आख्यायिका ही से मिल सकता है। एक समय महर्षि पाणिनि जी वन में भ्रमण करते हुए क्या देखते हैं कि एक भीलनी गुंजा (घुंघची), मणि और काँच को एक ही तागे में गूँथ रही है। यह देख कर उन्होंने कहा--

"काचं मणिं कांचनमेकसूत्रे ग्रथ्नासि बाले तव को विवेकः"

अर्थात् हे बाले! गूँजा, काँच और मणि को एक ही तागे (सूत) में पोहती है, यह तेरा कैसा विचार है?

तब भीलनी यह सुन कर कहती है—

"महामतिर्पाणिनिरेकसूत्रे श्वानं युवानं मघवानमेति"

अर्थात् महान् बुद्धि-वैभवशाली महात्मा ऋषि पाणिनि जी ही पूर्व में श्वान (कुत्ता), युवा (मनुष्य), मघवा (देवराज इंद्र) को एक ही सूत्र में गाँथ चुके हैं तो भला मैं क्या अन्याय कर रही

हूँ? क्योंकि 'महाजनोयेनगतः सः पंथाः। यह युक्ति-भरा उत्तर सुन मुनि चुपके से चल दिये।

इससे प्रकट होता है कि उस समय की वनवासी जातियाँ भी शिक्षा की पराकाष्ठा को पहुंची हुई थीं। द्विजातियों के बुद्धि-वैभव की कौन तुलना कर सकता था? परंतु हर्ष का स्थान है कि पाँच छः हज़ार वर्ष की सोई आर्य्य-संतान अब ३०-३२ वर्ष से पुनः भारत-भामिनियों के महत्व को समझ उनको सुशिक्षिता बनाने की चेष्टा करने लगी है और भारत-ललनाएं भी कुछ कुछ इस प्रयत्न में योग देने लगी हैं, जिसका फल यह हुआ कि स्त्रियों के पढ़ने के लिए कई पत्रिकाओं और अनेक कन्या-पाठशालाओं का जन्म हो गया है। परंतु अविद्या का रोग बहुत पुराना और कठिन हो गया है। इसको जड़ से दूर करने की शक्ति "कन्या गुरुकुल" रूप महौषधि में ही है जिसकी अत्यंत आवश्यकता थी। यह भी अभाव देशसेवानुरागियों की कृपा एवं पुरुषार्थ से पूर्ण होना चाहता है। अर्थात् इसी आगामी मार्च को १, २, ३, तदनुसार फाल्गुण शुक्ला १२, १३, १४, संवत् १९६८ वि० को हाथरस में उत्सव और शिक्षा प्रारम्भ होगी। इससे आशा है कि फिर भी कुछ समय बाद इस आर्य्यावर्त में उपर्युक्त गुणयुक्त देवियाँ उत्पन्न हो कर इस त्रिविध-ताप-वेष्टित भारत को त्रयताप से रहित कर सुख और शांति का सदन बनावेंगी। परम पिता परमेश्वर भारत-भाइयों और माताओं की अन्तरात्मा में प्रेरणा करे कि वे धार्म्मिक संपत्ति महिला-महत्व के गौरव पर पूर्ण प्रेम-पूर्वक विचार रखते हुए और कुशिक्षाओं को पददलित करते हुए वह दिवस दिखलावें जिसमें फिर यह आर्य्यावर्त अपनी पूर्व प्रभा से सारे संसार को प्रकाशित कर सुयश-भाजन बनें।

—देवदत्त शर्म्मा चतुर्वेदी

लीला*
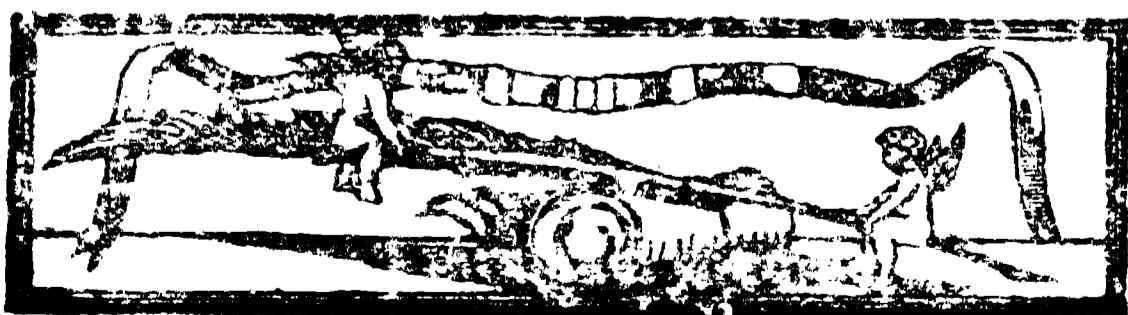
पहिला परिच्छेद ।

गाँव का नाम विजयनगर है। नाम तो चटकदार है, पर गाँव बहुत ही छोटा है। आठ दस घर ब्राह्मणों के, पाँच सात घर क्षत्रियों के, और दस पन्द्रह घर दूसरी जातिवालों के—इतने ही घरों से विजयनगर बसा है। इसी गाँव में लोकनाथ सिंह भी रहता था। लोकनाथ जाति में उच्च-कुल का क्षत्रिय था, पर दशा उसकी बहुत हीन थी। थोड़ी सी जमीन थी, उसकी साल भर की आमदनी कुल ३०) ३५) रुपए की थी। परन्तु लोकनाथ सिंह इतने ही से सन्तुष्ट था। क्योंकि उसे अपनी दशा पर सन्तोष था। जैसी दशा थी, उससे बढ़ कर कोई अरमान वह नहीं रखता था। ईर्षा, डाह, दूसरों की भलाई से दुःख मानना, इन सब अवगुणों का नाम तक वह नहीं जानता था। भर पेट हो, जैसा भी भोजन मिलता उसीसे उसके दिन कट जाते और वह उसीमें मगन रहता। पर हाँ, स्वदेश वा समाज की उन्नति के लिए उसका कुछ अनुष्ठान नहीं था। दरिद्र लोकनाथ से कोई देश वा समाज की हितकारी बातों की कैसे आशा कर सकता है?

लोकनाथ की पत्नी का नाम पार्वती था। यदि पार्वती के नामकरण में हमारा कुछ वश चलता तो हम उसका नाम पार्वती के बदले आनन्दमयी रखते। सचमुच पार्वती सब समय हँसमुख रहती थी। आठों पहर उसके मुख पर मुसक्यान की छटा फैली रहती थी। दरिद्र की पत्नी को इतना आनन्द कहाँ से मिल जाता था, लोग सोच सोच कर हैरान रहते थे। उसकी मुस्क्यान बड़ी मधुर थी—बड़ी मुलायम थी। बिजली से उसकी बराबरी नहीं हो सकती, क्योंकि बिजली बड़ी तीव्र—बड़ी चंचल होती है। चांद की चाँदनी से भी उसकी बराबरी नहीं होती, क्योंकि चांदनी बहुत धीमी—बहुत स्थिर होती है। पर, बिजली में और चाँदनी में जो बातें होती हैं, पार्वती की मुस्क्यान में भी वे सब पायी जाती थीं।

* बङ्गभाषा से अनुवादित।

दरिद्र लोकनाथ की दरिद्रता का अँधेरा हट कर आठों पहर पार्वती की मुस्क्यान से उजियाला भर जाता था।

पार्वती मुस्क्या ही के चुप नहीं रहती। गृहस्थी के सारे धंधे अपने हाथों से करती, और आमद खर्च पर भी विशेष दृष्टि रखती थी। इसलिए उसकी मुस्क्यान लोकनाथ को और भी मधुर लगती। उसके घर के आस पास फसल के अनुसार जो सब साग, पात, सब्जी, तरकारी लगी रहतीं, पार्वती उनको अपने हाथों से बोती, और पार्वती ही की सेवा से वे बढ़ती भी थीं। नित्य की रसोई में इन शाक तरकारियों से बड़ी सहायता मिलती। और अकेली तरकारी ही नहीं, पार्वती सूत कात कर भी लोकनाथ को धन की सहायता देती थी। बात यह है—पार्वती को कभी किसीने पल भर के लिए चुपचाप बैठे नहीं देखा। किसी तरह का काम हाथ में रहता तो पार्वती आनन्दमयी हो जाती, काम न होता तो वह विषादमयी बन जाती। परन्तु दरिद्र के घर में काम की कमी नहीं होती है। कभी कभी बीमार पड़ जाती तो उसे काम से छुट्टी लेनी ही पड़ती—परन्तु जितने दिन वह बीमार रहती, काम न करने का दुःख उसे पीड़ा के दुःख से भी अधिक दुःखदायी हो जाता।

इस धरती पर पार्वती को छोड़ लोकनाथ का कोई दूसरा आत्मीय नहीं था। यह दरिद्र दम्पती सुख दुःख को बराबर एक सा जान कर आनन्द से अपने दिन काटते थे। दोनों के मन में किसी भाँति की कामना नहीं थी। मनुष्य की स्वाभाविक कामना संतान के लिए होती है, इनके मन में कभी वह कामना भी नहीं होती थी। परन्तु कभी कभी कामना न होने पर भी काम्य सामग्री मिल जाती है। इस दम्पती के भाग्य से भी ऐसाही हुआ। तीस वर्ष की उमर में पार्वती के एक कन्या हुई। उसका नाम पड़ा—लीला।

कन्या का मुख देख माता का मातृस्नेह एक दम उमड़ आया। लोकनाथ भी आनन्दित हुआ, पर उसका आनन्द पार्वती की आनन्द-धारा से मिलने न पाया, क्योंकि कन्या के पालने पोषने की चिन्ता भी उसे होने लगी। अब तक दरिद्र होने पर भी दरिद्रता का नाम वह नहीं जानता था। जिसे अपनी दशा में संतोष रहता है, उसे दरिद्रता कैसे सता सकती है?

पहिले अपनी हीन दशा की बात लोकनाथ की चिंता से बाहर थी। पर कन्या के जन्मते ही उसके मन में वह बात जग पड़ी। सो उसका अचल मन भी अब चंचल होने लगा। परंतु पार्वती के मन में वैसी किसी चिंता का उदय नहीं हुआ। इस लिए पार्वती की आनंदधारा बेरोक-टोक बहने लगी। क्या संतान के स्नेह से परिपूर्ण सदा आनंदमय कोमल हृदय में भी कभी चिंता की ज्वाला भी जल सकती है?

लीलावती जब पाँच महीने की हुई, तब एक दिन तीसरे पहर पार्वती अपने घर के दालान में बैठी हुई उसे प्यार कर रही थी। छोटी सी लीला अधेड़ पार्वती की देखा देखी अपने नन्हे नन्हे ओठों में मुस्कुयान की लहरें उड़ा रही थी। वे लहरें नन्हीं होने पर भी पार्वती के हृदय पर जा जा कर टक्कर ले रही थीं। पास ही लोकनाथ बैठा हुआ अनमना सा कुछ सोच रहा था। उस समय पार्वती का आनंदसागर उमड़ रहा था, इससे लोकनाथ को अपने आनंद का हिस्सा देने के लिए वह बोली, "बैठे बैठे क्या सोच रहे हो? एक बेर देखो तो सही, मेरी अँधेरी कोठरी में चाँद की चाँदनी खिल रही है।"

तब लोकनाथ की चिंता हट गयी—उसने बड़े प्रेम से कन्या की ओर देखा। उसी क्षण कन्या ने हास्य की लहर उठाई; इस बार वह लहर लोकनाथ के हृदय तक चढ़ गयी। उससे न रहा गया—आनंद से अधीर होकर उसने कन्या का मुख चूम लिया। पार्वती से भला यह देख कैसे चुप रहा जाता? वह भी तब आनंद की झड़ी सम्हाल न सकी, कन्या के कोमल मुख को एक साथ सैकड़ों चुम्बन से लाल कर दिया। बार बार चुम्बन से झड़ी कुछ कम हुई तो बोली, "जिसके घर में ऐसा फूल खिलता है, उसे फिर किस बात की चिंता रहती है?"

लोकनाथ का चित्त और भी आनन्दित हो गया। परन्तु साथ ही साथ उसकी आँखों में दो बूंद आँसू भी देख पड़े। उसने झटपट आँखों को पोंछ कर कहा, "मुझे किसी दूसरी बात की चिन्ता नहीं है। चिन्ता है तो इसी लल्ली के लिए है। मैं सोच रहा था—आज इसके लिए थोड़ा सा दूध कहाँ मिलेगा?"

पार्वती—देखो, अब मेरे दूध से लल्ली का पेट नहीं भरता। दूध तो जरूर चाहिए। तुम अब चुपके मत बैठे रहो, कहीं से इसका फिकर करो।

लोक०—कहाँ जाऊँ? बिना पसे कौन दगा?

पार्वती—भगवान मेरी बच्ची के पेट के साथ साथ मेरी छाती का दूध भी बढ़ा देते तो किस बात की चिन्ता थी?

लोक०—तुम्हारा दूध कैसे बढ़ेगा? तुम्हें भर पेट खाने को भी तो नहीं मिलता।

पार्वती—इसकी कुछ चिन्ता नहीं। पर अब लल्ली को दुःख न होना चाहिए। मुझे चाहे और भी कम खाने को मिला करे!

लोक०—तब जीओगी कैसे?

पार्वती—जीऊँगी क्यों नहीं? कोई मेरी देह का लोहू निकाल कर उसके बदले थोड़ा सा दूध दे दिया करे, तब भी मैं नहीं मरूँगी। इसका मुखड़ा देख कर भी कहीं मरने को जी चाहता है?

लोक०—दुःख चाहे न हो, पर मरना किसीके बस का थोड़े ही है।।

पार्वती—अच्छा, एक काम क्यों नहीं करते? चीज़ वस्तु बेच बाच कर लल्ली के दूध का उपाय कर लो।

लोक०—चीज़ वस्तु ही क्या है? बस थाली, लोटा ही न है। बरतन न होंगे तो काम कैसे चलेगा?

पार्वती—क्यों नहीं चलेगा? लोटे में पानी पीओ तो वही स्वाद मिलेगा और मट्टी के कुल्हड़े में पीओ तब भी वही स्वाद मिलेगा। फिर कैसे न काम चलेगा?

तब अकस्मात् गहरी चिन्ता के समुद्र में लोकनाथ किनारे आ लगा। और कुछ न कह कर एक लोटा हाथ में लेकर घर से बाहर निकला॥

——:o:——

दूसरा परिच्छेद ।

इस भाँति खर्च बर्च की तंगी में लीला का पालन पोषण होने लगा। पर हमको मालूम है कि लीला को किसी तरह का दुःख नहीं हुआ। क्योंकि उसके माता पिता उसके लिए सब दुःख सह लेते थे। और उसे किसी बात की जरूरत होती तो पार्वती के आदर और लाड़ प्यार से उसकी कमी पूरी हो जाती थी। दरिद्र लोकनाथ की कन्या के आदर की बात सुन कर बहुत लोग हँसने लगेंगे; परंतु आप भले ही हँसा करें, हम चिल्ला चिल्ला कर कह सकते हैं कि इस दरिद्र की बेटी का जैसे लाड़ प्यार से पालन होता था, सैकड़ों दास दासियों से पाली हुई राजकन्या को भी कभी उतना आदर, उतना प्यार नहीं नसीब होता।

लीला जब अपनी तोतली तोतली बोली से "मा-मा, बा-बा" बोलती, उसके माता पिता उस समय सब दुःख, सब क्लेश भूल कर अपार सुख-सागर में तैरने लगते। पार्वती लीला को गोद ही में लिये हुए अपने सब काम करती। कभी कभी लोकनाथ की भी गोद में जा कर वह नन्ही सी बालिका अपने नन्हे से हास्य की लहर फैला देती। इस गोद-परिवर्तन के समय लीला का आनंद देख कर आनंद पाने के ही लिए लोकनाथ कभी कभी उसे अपनी गोद में ले लेता था। परंतु लीला बहुत देर तक पिता की गोद म चुप-चाप नहीं रह सकती थी, थोड़ी ही देर पीछे माता की गोद में कूद कर फिर हास्य के तरंग उठाने लगती। माता की गोद से पिता की गोद में, और पिता की गोद से माता की गोद में—इस भाँति गोद की अदला बदली में न जाने उसे क्यों इतना सुख मिलता, इसका पता उसके माता पिता को नहीं लगता था।

होते होते लीला जब डेढ़ वष की हो गयी, जब वह पाँव पाँव चलने लगी, तब फिर उसे हर घड़ी गोद में लेने की जरूरत नहीं रही। माता जब अपना धंधा करती, लीला उस समय उसका अंचल पकड़ कर उसके साथ साथ घूमती। माता जब चरखा कातती, लीला तब पास बैठ कर जल्दी जल्दी घूमनेवाले चरखे की ओर एकटक होकर देखा करती और उसकी मधुर रागिनी सुन कर मोहित हो जाती। बस छोटी सी कन्या का स्वभाव देख कर माता पिता अचम्भे में रह जाते। लीला को किसीने कभी रोते

नहीं देखा, यहाँ तक कि भूख से अकुलायी रहने पर भी वह कभी नहीं रोती थी। उसके इन सब असाधारण गुणों की बात सोचते सोचते बहुधा उसके माता पिता रो देते थे। उनको रोते देखती तो लीला घबड़ा कर बोलती, "अम्मा चुप लह, बाबू चुप लह"। और कभी किसी प्रकार की जिद्द या ऊधम—जैसा बालकों का बहुधा स्वभाव हुआ करता है—वह नहीं करती।

लीला जब पाँच वर्ष की हुई, तब एक दिन की बात सुनिए। पूर्व देशों की गँवई गाँवों की साधारण श्रेणी की स्त्रियाँ अपने हाथों से पानी भर कर आँगन के आस पास बोई हुई शाक-तरकारी के पेड़ों में पानी सींचा करती हैं। पार्वती तो ऐसे सभी काम अपने आप करती ही थी। उसकी देखा देखी लीला भी एक लोटे में पानी भर कर पेड़ों में सींचने लगी। उसको इस भाँति मेहनत करते देख माता ने कहा, "बेटी, तू क्यों मेरे साथ साथ पानी सींचने लगी है?" लीला ने अपने दोनों हँसते हुए ओठों को फुला कर कहा, "तो मैं अकेली बैठी बैठी क्या करूं?"

पार्वती—तुम पुत्तन की बेटी के साथ खेलो।

(पुत्तन एक पड़ोसी का नाम था)

लीला—नहीं, अम्मा, मैं उसके संग नहीं खेलूँगी—मैं तुमहारे संग खेलूँगी। तुमभी पानी सींचो, मैं भी पानी सींचूँ। मुझे यह खेल बहुत अच्छा लगता है।

लड़की की बात सुन कर पार्वती भौचकी सी रह गयी। फिर वह बोली, "क्योंरी! क्या यह तेरा खेल है? दुखिया की कोख से जन्मी है तो क्या बिधना ने तुझे ऐसे ही ऐसे खेल भी सिखा दिये हैं?"

लीला बड़े आग्रह से बोली, "अम्मा! तुम और बाबू जी जब देखो तभी दुख की बात कहा करती हो? दुख कैसा होता है? अम्मा, मुझे दुख की बात बता दो।"

मूर्त्तिमान दुःख की गोद में पाली पोसी हुई लड़की के मुख से ऐसा प्रश्न सुन कर उसकी माता की आँखों में आँसू भर आये। परंतु उसने अपने को सम्हाल कर कहा, "बड़ी होगी तो दुःख भी पहिचान लेगी। अभी छोटी है इसीसे दुःख तू नहीं जानती।"

लीला—बड़ी तो मैं हो गई हूँ। बाबू जी तो उस दिन कह रहे थे, "लीला अब बड़ी हो गई है।"

पार्वती—और भी बड़ी हो जा, तब सब बातें समझने लगेगी। तब तू मेरी तरह पेड़ों में पानी सींचा करना, गृहस्थी के काम धंधे करना। अब करेगी तो तुझे दुःख होगा।

लीला—क्या इसीसे दुख होता है? तो तुमको भी इस काम से दुख होता होगा?

पार्वती—नहीं।

लीला—फिर मुझे दुःख क्यों होगा?

पार्वती—दुःख चाहे न हो, पर पानी लग लग के तू बीमार हो जायगी।

इससे पहिले लीला बीमार हो गयी थी, सो बीमारी का हाल वह अच्छी तरह से जानती थी। अब माता की बात सुन कर उसकी आँखें डबडबा आयीं। उसने रोनी सी होकर कहा,—"तब तुमको भी तो पानी लग लग के बीमारी हो जायगी"।

माता ने उसके आँसू पोंछ कर कहा, "नहीं, इससे मैं बीमार नहीं पड़ूँगी।"

माता की बात सुन कर कन्या को अचम्भा हुआ। उसने पूछा, "फिर मैं कैसे बीमार हो जाऊँगी?"

पार्वती इस "कैसे" का उत्तर कैसे देती? तब मा बेटी दोनों जल सींचने लगीं। माता बड़ी गगरी में पास के ताल से पानी भर लाती और लौकी, कौंहड़े, शाक भाजी आदि के पेड़ों में पानी डालती रही। लीला भी माता की देखा देखी एक लोटे में उसी भाँति पानी भर भर कर पेड़ों को सींचती रही।

इस भाँति लीला इतनी छोटी ही अवस्था से माता का हाथ बँटा लेने की शिक्षा पाने लगी। वह दूसरी लड़कियों की भाँति झूठे खेल कभी नहीं खेलती। माता के साथ साथ रह कर घर के सच्चे खेल खेलने ही उसे अधिक रुचते थे। संध्या के समय चंद्रमा की चाँदनी में बैठ कर जब माता चरखे में सूत कातती, तब कन्या उसके पास बैठ कर कपास सँवार देती थी। कुछ और

बड़ी होने पर माता से सूत लेकर पैंठ के दिन हाट में जाकर सूत बेच आना भी उसने सीख लिया। एक पड़ोसिन इस काम में लीला की सहायता करती। वह नीच जाति की थी, तब भी लीला उसे चाची कहा करती॥

(क्रमशः)

यूरोप की नारी

इसी जनवरी सन् १९१२ के माडर्नरिव्यू नामक अँगरेज़ी मासिक पत्र में "वोमेन इन दी वेस्ट" शीर्षक एक निबन्ध छपा है। इसके लेखक हैं लाला हरदयाल जी। आप एक बड़े विख्यात कृतविद्य सज्जन हैं और बहुत दिनों तक योरोप अमेरिका की यात्रा करके वहाँ की स्त्रियों की बातें अपनी आँखों से देख चुके हैं। इस बहुत वर्षों के विदेशवास से आपको अनुभव हुआ है कि स्त्रियों की स्वाधीनता यूरोप आदि में भी नहीं है। वहाँ की स्त्रियाँ भी पूर्वी देशों की स्त्रियों की भाँति सब बातों में पुरुषों के अधीन हैं—नहीं, नहीं, पूर्वी देशों की स्त्रियों से भी पश्चिमी देशों की स्त्रियों की दशा बहुत सी बातों में अधिक शोचनीय है। लाला हरदयाल का लेख बहुत लम्बा है, उसका पूरा अनुवाद हम यहाँ देते तो इस दुबली पतली क्षीणाङ्गी पत्रिका का बहुत सा कलेवर उस लेख से ही ढक जाता। परंतु अँगरेज़ी पढ़े लिखे पाठकों और पाठिकाओं से हम विनती करते हैं कि वे अँगरेज़ी लेख को पढ़ कर उन लोगों का भ्रम दूर करें जो लोग समझते हैं कि यूरोप अमेरिका की मेम साहिबागण सब बातों में भारत की भोली भाली नारियों से अधिक सुख से अपने दिन काटती हैं। बात ठीक इसके विपरीत है, और सारे लेख से फल यही निकलता है कि भारत की स्त्रियाँ यूरोपीय मेमों से अवनत दशा में कभी नहीं रहीं, और आज दिन भी नहीं हैं। हिन्दी पढ़नेवाले पाठकों और माताओं की जानकारी के लिए हम यहाँ पर लाला साहब के लेख के कुछ अंश उद्धृत करते हैं। इतने से भी हमारा मतलब कुछ न कुछ निकल आवेगा।

अँगरेज़ी निबन्ध में लिखा है—

यदि किसी कन्या से उसके जन्म लेने के पहिले पूछा जावे कि तुम पूर्व देश में जन्म लेना चाहती हो या पश्चिम में, तो वह क्या जवाब देगी ? वह, हो न हो, यही कहेगी कि मैं जन्म ही नहीं लेना चाहती। बात सच है, क्योंकि क्या पूर्व, क्या पश्चिम, क्या हिन्दुस्तान, क्या इङ्गलिस्तान, सभी देशों में स्त्री की दशा एक ही सी है, सभी देश की स्त्रियाँ पुरुषों की गुलामी करती हैं। जब गुलामी ही करना बदा है, तब क्या पूर्व देश, क्या पश्चिम ? "कोउ नृप होय, हमैं का हानी। चेरी छाँड़ि न होइबे रानी।" जहाँ जाँय स्त्रियों को चेरी ही बन के रहना पड़ेगा।

परंतु गुलामी किये विना किसी के दिन नहीं कटते। पुरुषों को भी तो गुलामी करनी पड़ती है ! राज-सम्बन्धी गुलामी, नीति-सम्बन्धी गुलामी, धन-सम्बन्धी गुलामी, विद्या, बुद्धि, बल, सभी बातों में किसी न किसी तरह से पुरुषों को भी तो बन्धन में रहना पड़ता है। इससे स्त्रियाँ भी यदि उनकी योग्यता के अनुसार किसी बन्धन में रहें तो क्या विचित्र है ? बात तो ठीक है, परतु स्त्रियों का बन्धन और भी अधिक नीच है, वे गुलामों की गुलामी करती हैं।

इस सम्बन्ध में पूर्व और पश्चिम में एक ही दशा है, अन्तर कुछ नहीं है। अंगरेज़ पादरी और दूसरे आत्माभिमानी यूरोपियन और अमेरिकन लोग कहा करते हैं कि उनकी स्त्रियाँ समाज में बहुत ऊँची पदवी पर प्रतिष्ठित हैं, वे मर्दों की बराबरवाली समझी जाती हैं, उनको सच्ची स्वाधीनता का सुख मिलता है, और सब बातों में वे पूर्व देशों की स्त्रियों से अधिक सुखी, अधिक बुद्धिमती और अधिक चतुर हुआ करती हैं। सुनने में ये सब बातें बहुत अच्छी लगती हैं, पर इनमें बस इतना ही ऐब है कि बिलकुल झूठ बातें हैं।

यह डींग कि पश्चिमी स्त्रियाँ पूर्वी स्त्रियों से अधिक सम्मानित हैं, पुरुष उनका अधिक आदर करते हैं, बिलकुल झूठी है—इतनी झूठी है कि उससे घृणा होने लगती है। स्त्रियों के सम्बन्ध में पुरुष सब जगह एकसे स्वार्थी पशुवत् आचरण करते हैं। यूरोप की स्त्रियों में यदि किसी किसी बुराई की कमी है, बहुत सी

बातों में उनमें इनसे भी बढ़ चढ़ कर कितनी ही बुराइयाँ पायी जाती हैं। दोनों समाजों की दशाओं में थोड़ा बहुत अन्तर तो जरूर ही होगा, परन्तु उससे स्त्रियों की असली दशा में बहुत अन्तर नहीं पड़ता। दोनों देशों में जैसे एक ओर कुछ अच्छी बातें हैं, उसी तरह दूसरे पक्ष में उतनी ही बुराइयाँ भी मिलती हैं। उन्नत दशावाली डींग तो स्वप्न की बात है।

कुछ दृष्टान्त देने से ऊपर का कथन स्पष्ट हो जायगा। पहिले बड़े घरों की बात लीजिए। क्योंकि बड़े घरों ही में विद्या, स्वाधीनता, सम्मान आदि की डींग ज्यादः हाँकी जाती है। और इन्हीं बड़े घर की मेम साहबों की नकल उतारना आज कल हमारे देश के भी बहुत से विद्याभिमानी लोग अपना जीवन सफल करने में एक मात्र सहायक समझते हैं। हमारे विद्याभिमानी हिन्दुस्तानी भाई देखते हैं कि इनकी स्त्रियाँ कालेज जाती हैं, पियानो बजाती हैं, नयी नयी पुस्तकें पढ़ती हैं, लेकचर देती हैं, उपन्यास लिखती हैं। इनकी चाल-ढाल देख कर वह मोहित हो जाते हैं और झट से समझ लेते हैं कि इनकी दशा बहुत उन्नत है। हमारे भाई यह नहीं देखते कि इस चाल-ढाल में कितनी धूर्त्तता, कितनी घृणा, कितना दुःख, कितनी निर्दयता भरी रहती है, यद्यपि ऊपर से सुन्दरता की बहार और सभ्यता की भड़क नेत्रों में चकाचौंध लगा देती है। वे नहीं समझते कि इन बातों से स्त्रियों का कितना भारी अपमान होता है। स्त्रियों को ये सब बातें क्यों करनी पड़ती हैं? पति ढूंढ़ने के लिए। ऐसा न करें तो उनको पुरुषों की अधीनता रूपी सुख कैसे मिले?

इस बड़े घरवाले समाज में स्त्रियों को १५ वर्ष की अवस्था से अन्तकाल तक दुःख झेलना पड़ता है। क्यों? बिना अन्न-पानी के, बिना कपड़े-लत्ते के, वे एक दिन भी नहीं जी सकतीं। भोजन वस्त्र का कोई न कोई देनेवाला उनको जरूर चाहिए। सो वे विवाह न करें तो भूखों मर जायँ। भोजन वस्त्र का मालिक मर्द है, और वही जिसे चाहे हाथ उठा कर देता है। कहिए, इन सभ्य देशों में—स्वाधीनता की झूठी डींग हाँकनेवाले समाज में—स्त्रियों के लिए स्वाधीन प्रबन्ध क्यों नहीं होता? अन्न, वस्त्र, मकान, जीवन-यात्रा की सारी सामग्रियों के लिए स्त्रियों को पुरुष का मुँह क्यों

ताकना पड़ता है ? (मैं किसी इनेगिने धनी परिवार की बात नहीं कहता, बात हो रही है सारी स्त्रीजाति और सारी पुरुष जाति के विषय में। किसी इक्के दुक्के की बात नहीं होती।) अप्सरा की सी सुन्दरी स्त्रियाँ भी हवा पी कर नहीं जी सकतीं। जीवन व्यतीत करने के लिए उनको पुरुष के अधीन होना ही पड़ता है। और इस अधीनता के बन्धन में पड़ने के लिए पूर्वी देश की स्त्रियों को दुःख नहीं उठाना पड़ता। उनके मा-बाप ही उनका योग्य पात्रों से विवाह करवा देते हैं। परन्तु यूरोप में बेचारियों की बड़ी दुर्गति होती है। अपने रोटीवाले के लिए—अपने पति के लिए—उन्हें बड़े बड़े दुःख झेलने पड़ते हैं। एक नवयौवना कन्या को इस विशाल संसार में अपना प्रेमी ढूँढना पड़ता है। चाय पीने के न्योतों में, नाचों में, गिर्जों में, जहाँ देखो वहीं बेचारी रोटीवाले की खोज में लगी रहती हैं। इतने नाच-रंग, दावत, जाफत, सब इसी एक मतलब से रची जाती हैं। स्वाधीनता के नाम से बेचारी कन्याओं को कैसी कैसी मुसीबतें उठानी होती हैं! कारलाइल नामक महाज्ञानी अंगरेज़ का कथन है कि "स्वाधीनता है तो बड़ी अच्छी चीज़! परन्तु भूखों मरने के लिए स्वाधीनता कभी अच्छी नहीं होती।" युरोप की कन्याओं की स्वाधीनता भी इसी साँचे की ढली होती है।

बाजा बजाना, गाना, कालेज में पढ़ना, अधनंगी हो कर नाचना, कूदना, यह सब वहाँ की सभ्यता की शिक्षा के अंग हैं। इनकी क्या आवश्यकता है? वही पुरानी बात—विवाह! इन बेचारियों को हाव-भाव की भी शिक्षा सीखनी पड़ती है। हाव-भाव से मतलब, कोई पुरुष आवे तो उसका मन हर लेने के लिए उठना, बैठना, नज़ाकत दिखाना, इत्यादि ही है। इन्हीं हाव-भावों, इन्हीं सभ्यता के अंगों को सीखने के लिए बेचारियों को अपनी माताओं से धमकियाँ घुड़कियाँ सुननी पड़ती हैं। जो ऐसा न करेगी, जो पुरुषों का मन अपनी चटक मटक से बहका न सकेगी तो आगे चलकर उसे खाना-कपड़ा कौन देगा? मा-बाप कब तक उसे पालेंगे? मर्द के लिए जैसे रोज़गार, नौकरी-चाकरी है, स्त्री के लिए उसी भाँति मर्द की गुलामी करना, उसकी पत्नी बनना भी रोजगार या नौकरी है। जैसे बे-रोजगार मर्द, वैसे ही अनब्याही स्त्री। स्त्री

पियानो उसी लिए बजाती है जिस लिए उसका भाई कोई पेशा सीखता है। मतलब वही एक ही बात - हँड़िया की खुद बुद, दाल रोटी का मामला। फिर स्वाधीनता कहा रही ?

व्याही जाने के लिए वा व्याहने को अच्छे पुरुषों का मन मोह लेने के लिए, शिक्षाकाल में तो बेटियों को गाना, बजाना, ठसक-मसक, सभी बातें सीखने के लिए अपनी माताओं से ताड़ना खानी ही पड़ती है; परंतु यौवन में भी उनकी दुर्दशा बहुत बुरी तरह होने लगती है। रात दिन वह पुरुषों का मन मोहने की जुगत सोचा करती हैं। जो समय इनको धर्म-चर्चा, सच्ची शिक्षा, गृहधर्म आदि में बिताना चाहिए, वह समय नाच में, रंग में, खेल में, कूद में, अपने हृदय को कलुषित करने में खर्च होता है। किसी मर्द को अपना भर्त्ता बनाने के लिए उन्हें खुशामदी, भाँड़, दिल्लगीबाज, और नाचैए-गवैयों की श्रेणी में उतरना पड़ता है। है तो यह अवनति, पर लोग इसीको उन्नति कहते हैं। फिर इन कामों के करने में नवयौवना कन्याओं को कैसे कैसे लालचों में, कैसी कैसी पाप चिन्ताओं में डूबी रहना पड़ता है, और बहुधा उनको सचमुच कैसी निर्लज्ज दशा में गिर पड़ना पड़ता है, उसका कहना ही क्या है ? क्या इस भाँति स्वयंबरा होने से हमारे देश की विवाह-पद्धति बुरी है ?

और विवाह की इच्छा रखनेवाले सभ्य पुरुषों की बात क्या कहें ? वे जैसा चाहते हैं, उनको प्रसन्न करने के लिए स्त्रियों को वैसा ही करना पड़ता है। उन्हीं के लिए बेचारी सरला सीधी सादी पवित्र कुलकन्याओं को इतने दुःख झेलने पड़ते हैं। तिस पर भी सभ्यताभिमानी पुरुष महाराज स्त्रियों का कितना आदर करते हैं, इस बात को अंगरेजी कवि किपलिंग ही ने एक जगह साफ कह दिया है। एक स्त्री ने कहा, "तुम चुरुट मत पिया करो।" चुरुट पीने से तुम्हारी देह से बड़ी बुरी बास आती है। चुरुट पियोगे तो मैं तुम से विवाह नहीं करूंगी। पुरुष महाराज सोच रहे हैं, नहीं, नहीं, स्त्री के लिए मैं अपने आराम की चीज़ नहीं छोड़ूंगा। स्त्रियाँ तो एक नहीं, मन मानी मिल जायँगी,—चुरुट तो चुरुट ही है। मतलब यह, कि पुरुष अपने स्वार्थ के सामने स्त्री का मूल्य एक चुरुट से भी तुच्छ समझता है। यह हमारे असभ्य

भारतवर्ष की बात नहीं है। इस बात से एक महासुसभ्य समाज के महा-प्रतिष्ठित कवि ने अपने समाज का चित्र दिखाया है।

जब भारतवर्ष की नारी को पति, घर और सुख के सभी साधन आप से आप घर बैठे मिल जाते हैं, तब क्या उसकी दशा अपनी पश्चिमी बहिनों से श्रेष्ठ नहीं है ?

पश्चिमी नारी को इतना करने पर भी पति नहीं मिलता। बहुत से पुरुष अपना विवाह ही नहीं करते। वे भौंरों की भाँति पुष्प से पुष्पान्तर में उड़ उड़ कर मधु चाखा करते हैं। अहा, कैसा अच्छा सम्मान है इन सभ्य पुरुषों का अपनी स्त्रियों के लिए !

जब बहुत से पुरुष विवाह नहीं करते तो बहुत सी स्त्रियाँ भी अनब्याही रह जाती हैं। उनका क्या होता है ? वे जन्म भर 'हाय व्याह, हाय व्याह,' करती करती बुढ़िया हो जाती हैं, उनके मन का अरमान उनके साथ साथ कबर में गड़ जाता है। और पेट भरने के लिए उनको दफ़्तरों में लिखना पढ़ना, स्कूलों में पढ़ाना, दूकानों में दर्ज़ी के कपड़े सीना, बाजा सिखलाना, धनी परिवारों के लड़कों को पालना, इत्यादि काम करके पेट भरना पड़ता है। एक एक डाकखाने में स्त्रियाँ खिड़कियों के सामने अपनी नौकरियों पर दिन दिन भर खड़ी रह जाती हैं। बहुत सी स्त्रियाँ अपने घरों में किरायेदार बसा लेती हैं, और उनके लिए भोजन बनाती हैं, उनकी कोठरियों की झाड़ू बुहारी करती हैं, उनके बिछौने बिछाती हैं, उनके जूतों में स्याही लगाती हैं, और इसी भाँति किरायेदारों की दासी बन कर जन्म काटती हैं। ये स्त्रियाँ बहुधा लिखी पढ़ी और भले घर की होती हैं, तब भी इनको पेट के लिए नीच वृत्तियाँ करनी पड़ती हैं। और यूरोपवाले, जो स्त्रियों का इतना सम्मान करते हैं, अपनी बहिनों, बेटियों, भतीजियों से इस तरह काले आदमियों की गुलामी कराना बुरा नहीं समझते, पर आप उनको खाने के लिए एक टुकड़ा नहीं देते। इन बेचारी असहाया नारियों को देख कर विलायत में गये हुए हिन्दुस्तानी मन में सोचते हैं, क्या इनके भाई, बाप, चाचा या कोई आत्मीय नहीं हैं जो बेचारियाँ अकेली ज्यों त्यों करके अपने पेट पालने को छोड़ दी जाती हैं। जहाँ स्त्रियों की इतनी इज्जत की डींग सुनते थे, क्या इनके

आत्मीयों को इनकी इज़्ज़त की परवा ही नहीं है ? क्या इस बनिये-शाही में जहाँ लोग परस्पर लूटने ही को मिला करते हैं, क्या इस देश में स्त्रियों का स्त्रीत्व ही मिट जायगा ?

कुछ स्त्रियाँ जिनके पास धन है, अपने धन के बल से पुरुष पा जाती हैं। उनका सम्मान तो ऐसा ही वैसा होता है, उनके लिए किसे क्या पड़ी है, परंतु उनके धन की लालच से शहद पर मक्खियों की भाँति पुरुष उनके पीछे लगे रहते हैं। धन के लालच से विवाह यूरोप में एक साधारण बात है।

कहने को लोग अपने मुँह आप लाख मियाँ मिट्ठू बना करें, पर सभ्य देश की बात ऐसी ही है। स्त्रियों के सामने दिखावटी सम्मान और झुक झुक कर सलाम एक प्रकार की कसरत या जिमनास्टिक ही है। हम लोगों को तो देख देख कर हँसी आती है।

विवाहित जीवन किसी स्त्री को बुरा नहीं लगता। जब विवाह में इतनी कठिनाइयाँ होने लगीं, तभी पढ़ी लिखी स्त्रियाँ कोई डाक्टर होती हैं, कोई वकालत सीखती हैं, कोई सम्पादक बनती हैं। परंतु जब इन पेशों में मर्द ही भूखों मरते हैं तब स्त्रियाँ भी जो मर्दों के कामों में हिस्सा बटाने लगेंगी तो उनको क्या मिलेगा ? वे बेबस हो कर ही ये सब काम करती हैं। नहीं तो स्त्रियों का स्त्रीत्व गृहस्थी ही में फलीभूत हो सकता है। विवाह के बाजार में कोई उनको नहीं पूँछता, पारिवारिक सुख की उनको आशा नहीं रहती, तभी बेचारियाँ दूसरे पेशे ढूँढ़ने लगती हैं। और धनार्जन के लिए लोभ, ईर्षा, चालाकी, आदि से सहायता लेनी पड़ती है, जिनके फंदे में पड़ कर स्त्रियों का स्त्रीत्व, उनकी कोमल वृत्तियाँ धीरे धीरे नष्ट भ्रष्ट हो जाती हैं। यदि कोई स्त्री इन सब झगड़ों से अलग रहने के कारण कुछ अज्ञानता ही में रहती हो, तो ऐसी अज्ञानता भी अच्छी है। ऐसी अज्ञानता उसको संसार की कुटिलता और दुष्टता से तो बचा रखती है। परंतु दिन दिन आगे बढ़नेवाली यह सभ्यता बेचारी स्त्री को भी घसीट कर दूकानदारी में खींच लाती है; स्त्री को भी झूठ बोलना, धोखा देना, मोल भाव और लेन देन करना पड़ता है; उसको भी सस्ते में लेने और महँगे भाव देने की नीति सीखनी पड़ती है।

इस भाँति की स्त्री-स्वाधीनता दो धार की छुरी का काम करती है, या यों कहिए कि छुरी के घाव पर निमक छींटती रहती है; क्योंकि पहिले तो स्वाधीनता स्त्रियों का स्त्रीत्व—उनकी गृहस्थी का राज पाट—छीन लेती है; दूसरे, ऊपर से उनके सिर जीविका की चिन्ता भी मढ़ देती है। इतने ही से यूरोप के जेन्टिलमैनों के स्त्री-सम्मान का दृष्टांत मिल आता है।

ये तो अनब्याहियों की बात हो चुकी। विवाहिताओं की दशा भी अच्छी नहीं होती। उनके पुरुष उनसे सच्चे प्रेम का वर्त्ताव नहीं रखते और एक फरासीसी लेखक ने साफ साफ लिख दिया है कि पुरुषों के दो तरह की स्त्रियाँ होती हैं, एक विवाहिता और दूसरे साधारणतः दो, एक, वा और भी अधिक रक्षिता। वहाँ के लोग खुल्लमखुल्ला तो एक ही विवाह करते हैं, परंतु अधिकांश लोग बहुपत्नीक ही होते हैं, चाहे वह पत्नी धर्म-पत्नी न भी हो।

उच्च और मध्य श्रेणी की शिक्षा की बात जो सुनी जाती है वह बिलकुल ऊपरी शिक्षा ही होती है, गहरी शिक्षा नहीं कही जा सकती। कालेजों में जानेवाली स्त्रियाँ भी कुछ गम्भीरता या बुद्धि की बातें नहीं सीखतीं। किसीके मन की गहराई जाँचनी हो तो उनसे बात चीत करो। इन शिक्षाभिमानी स्त्रियों से बात करने में तबियत ऊबने लगती है। सिवाय पराई चर्चा के और कुछ उनको नहीं सुहाता। घर पर पढ़ती भी हैं तो नावल। हिन्दुस्तानी तो शक्की या 'सुपरस्टिशस' के नाम से बदनाम हैं ही, परंतु ये पढ़ी लिखी सभ्य स्त्रियाँ भी पक्की 'सुपरस्टिशस' होती हैं। इसलिए पाखंडियों को इन लोगों में तिजारत करने का अच्छा अवसर मिलता है। अमेरिका सायन्स या विज्ञान की भूमि है, परंतु वहाँ भी झूठी बातों की चर्चा यानी 'सुपरस्टिशन' पायी जाती है। हाथ देख कर भला बुरा बतानेवाले या जादूवाले सब शहरों में उतनी ही अधिकता से पाये जाते हैं जितनी कि नाऊ या धोबी। प्रेम की चुटकियाँ, यानी यन्त्र मन्त्र गंडे ताबीज का व्यापार भी बड़ी जोर से चलता रहता है। फिर उनकी शिक्षा को शिक्षा कैसे कहें? और अपने देश की स्त्रियों को जो सच्ची शिक्षा—गृहस्थी की शिक्षा दी जाती है उसे भी कैसे सत्य न मानें?

फिर कैसे कहें कि वहाँ की स्त्रियों की दशा यहाँ वालियों से उन्नत है। दोनों बहुत सी बातों में एक ही सी देख पड़ती हैं।

ऊपर हम जो कुछ कह आये हैं, वह सब उच्च और मध्यम श्रेणीवालियों की बात है। अब तनिक नीच श्रेणी वा मजदूर जाति की नारियों की बात सुनिए। किसी देश की सच्ची दशा देखनी हो तो निरे महलों ही की सैर मत कीजिए। गली कूचों की पर्णकुटियों का भी दर्शन करना जरूरी है। जहाँ के कमकर लोग प्रसन्न हैं वहाँ की महा-जाति भी बहुत प्रसन्न होगी। इससे कमकर जातियों ही के अवलोकन से महा-जाति की सच्ची दशा जान पड़ेगी। पश्चिम की कमकर जाति की दशा तो पहले देखनी चाहिए। वहाँ की स्त्रियों को भयंकर कठिनाई और विपत्ति से युद्ध करना पड़ता है। कमकर जाति की स्त्रियाँ तो मानो मोल ली हुई गुलाम हैं। छोटी छोटी लड़कियों को कारखानों में अपनी शक्ति से बाहर परिश्रम करना पड़ता है। माताएँ भी अपने बच्चों को छोड़ कर कारखानों में काम करती हैं। अब जरमनी में एक दानसभा बनी है जिससे बच्चा जनने के बाद माताओं को छ हफ्ते तक खाने को मिलता है, परंतु इस समय के पीछे वे फिर कारखानों में घुसती हैं, नहीं तो भूखों मर जाँय। कहीं कहीं बच्चा के रहने के लिए कारखानों में एक जगह बनी रहती है, जहाँ माताएँ काम से छुट्टी पाते ही जा कर उनको दूध पिला आती हैं। परंतु यह सुख सब जगह नहीं मिलता। सब जगह दूध पीते बच्चे तक काम के समय माता के पास नहीं ठहरने पाते। फल इसका यह होता है कि अकेले जर्मनी में बीस लाख बच्चों में से चार लाख जन्म लेने के पहिले ही वर्ष में मर जाते हैं। इसीका नाम है सभ्यता! इसी सभ्यता का दम भरनेवाला यूरोप है! स्त्रियों को सबेरे से शाम तक कारखानों में काम करना पड़ता है। तब वह घर जाकर फिर रात में काम करती हैं। अमेरिका के बड़े बड़े कारखानों में जहाँ भद्र-घर के मनुष्य रेशम, साबुन, इत्र, फीते, आदि मोल लेने जाते हैं,— वहाँ युवती स्त्रियों को दिनभर बारह चौदह घंटे काम करने पर जो मजदूरी अमरिका के सिक्के में मिलती है हिन्दुस्तानी सिक्कों में

उसका मूल्य डेढ़ आने के पैसों से ज्यादा नहीं होता। चौदह घंटे की मेहनत से छ पैसे की आमदनी युवा स्त्रियों की हुई! दिन भर उनको खड़ी रहना पड़ता है, और इससे उनका शरीर भी जल्दी टूट जाता है। और युरोप के बाँके छैले जेन्टिलमैन, जो अपनी स्त्रियों का इतना अधिक सम्मान करते हैं, कभी अपनी इन गरीब बहिनों की ओर ताकते तक नहीं। अकेले युनाइटेड स्टेट्स ही में ऐसी ६० लाख अबलाएँ हैं जिनको दिन भर पसीने बहाने पर दो आने से ज्यादा नहीं मिलता। और उनसे परिश्रम इतना लिया जाता है कि कोई साधारण धोबी अपने गधे से भी इतना परिश्रम नहीं लेता होगा। न्यूयार्क में कुछ परदेशी परिवार रहते हैं जिनकी स्त्रियाँ बड़ी रात बीतने तक नकली फूल, जालियाँ, टोपी, आदि बना कर एक आना रोज कमा लेती हैं। वे रहती ऐसी कोठरियों में हैं जहाँ सूअर भी रहने से घृणा मानेंगे।

अब और ज्यादा लिख के क्या होगा? जो लोग विलायती सभी बातों को अच्छा बताते हैं, वे विचारशील मनुष्य नहीं हैं। यदि वे कुछ विचार करके दोनों देशों की दशाओं को मिलावेंगे तो उनको कहना ही पड़ेगा कि हिन्दुस्तान के लिए पुरानी हिन्दुस्तानी शिक्षा ही लाभकारी है। नई रोशनी के जो सभ्यताभिमानी हमारी स्त्रियों की दशा गिरी हुई समझ कर उसे विलायती ढाँचे में ढालना चाहते हैं, वे देश के शुभचिन्तक नहीं हैं॥

—गिरिजाकुमार घोष

श्रीमती केसरदेई जी की विलायत यात्रा*

इस लेख में आप लोग देखेंगी कि एक पञ्जाबी सिख रमणी ने किस प्रकार साहस के साथ अकेली हिन्दुस्तान से चल कर, मार्ग में अनेक प्रकार के कष्टों को सहन करके, विलायत में जा अपने पति के चरणों के दर्शन किये। इस लेख से आपको बहुत सी बातें भी मालूम होंगी और मनोरञ्जन भी होगा। खैर! अच्छा

* यह लेख 'देवनागरी' के तीसरे वर्ष, अङ्क ५, ६, ७, ८ में पंजाबी में निकले हुए श्रीयुक्त निहालसिंह-लिखित "श्रीमत्ती केसरदेई जी दा बिलायती सफर" का अनुवाद है।

यही होगा कि केसरदेई जी की रामकहानी आप लोग उन्हींके मुँह से सुनें। लीजिए, सुनिए।

"मैं पञ्जाब की रहनेवाली हूँ। श्री अमृतसर में मैं पैदा हुई थी। थोड़ा बहुत जो कुछ मैंने पढ़ा लिखा है सो भी यहीं। माता पिता ने मेरा विवाह भी यहीं के एक भद्र पुरुष के साथ किया। पति के निकट मेरा बहुत समय तक रहना नहीं हुआ। विवाह के थोड़े ही दिन पीछे वे मुझे मेरी माँ के पास छोड़ कर विलायत चले गये। कुछ दिन बाद यह खबर मिली कि उन्होंने जहाज़ पर डाक्टरी की नौकरी कर ली है। यह हाल सुन कर मुझे बड़ा दुःख हुआ। मैं सोचने लगी कि अगर वे कभी नहीं आवेंगे तो मेरे जीवन की नाव कैसे पार लगेगी। मैंने अपना सारा दुखड़ा उन्हें लिख भेजा और विनती की कि मुझ अनाथा की भी खबर लेना। उत्तर में उन्होंने बहुत तरह से धीरज दिया और लिखा, "तुम्हारे लिए यह बहुत अच्छा मौका है। अगर मिहनत करके थोड़ी सी भी अँगरेज़ी सीख लो तो मैं तुम्हें अपने पास बुलालूँ"।

पति का बिछोह क्या वस्तु है यह वही जान सकती हैं जिन्हें पति से प्रेम है। उनकी आज्ञानुसार मैंने अँगरेज़ी पढ़ना शुरू किया। दो बरस रात दिन परिश्रम करने का यह फल हुआ कि मैं टूटी-फूटी अँगरेज़ी बोल लेने लगी। अब मैंने पति से विनती की कि अब तो दासी की खबर लो। मैं दर्शनों के लिए तरस रही हूँ। इसके जवाब में मुझे १३ सितम्बर को पत्र मिला कि "मैंने टामस कुक के बम्बई के दफ़्तर में खर्च के लिए रुपये जमा कर दिये हैं, तुम चली आओ"। 'टामस कुक' एक कम्पनी है जिसके दफ़्तर दुनिया भर में फैले हुए हैं। इनका काम यह है कि मुसाफिरों को उनके सफ़र में आराम देना और उनके सफ़र का प्रबन्ध करना। इस कम्पनी का दफ़्तर बम्बई में भी है जो कि हिन्दुस्तान से बाहर जाने आनेवालों को उनके सफ़र में मदद देता है। जब मैंने अपनी माता से यह हाल कहा तो वे रोने लगीं। अड़ोसी पड़ोसी, हेती ब्योहारी, सभी यह कहने लगेकि इतने लम्बे सफ़र के लिए इसे अकेली नहीं जाने देना।

तीन दिन तक रात दिन घर में यही बखेड़ा मचा रहा। लाचार होकर १७ सितम्बर की डाक से मैंने फिर विलायत चिट्ठी रवाना

की कि मुझे कोई अकेली नहीं आने देते, आप स्वयम् बम्बई आकर लिवा ले जाँय। चौथे दिन २० सितम्बर को मुझे उनकी दूसरी चिट्ठी मिली। इसमें उन्होंने लिखा कि "अगर तुम नहीं आओगी तो पीछे पछताओगी। मेरा बड़ा नुकसान होगा। यहाँ मकान किराये ले रक्खा है।" इसी तरह की उन्होंने बहुत सी बातें लिखीं। इस चिट्ठी को पढ़ कर मैंने ठान लिया कि जाऊँगी ज़रूर, चाहे कोई जाने दे या न आने दे। जो कुछ किस्मत में होगा वही होगा। अस्तु, बड़ी कठिनता से मैंने सब को राज़ी किया कि वे मुझे यहाँ से रवाना कर दें। आगे परमेश्वर मालिक है। आखिर को ता० २७ सितम्बर को मैं रोती हुई माता तथा और बंधु बांधवों से विदा हो कर बम्बई की डाक में बैठ विलायत के लिए चल पड़ी।

मेरे पति अपने एक बम्बई के मित्र, मि० सिंडे को पहिले ही से लिख चुके थे कि वे मेरे सवार होने में सहायता करें। रवाना होते ही मैंने बम्बई को तार दे दिया। रेल का सफ़र तै करके ३० सितम्बर की संध्या को बम्बई पहुँच गयी। दूसरे दिन "टामस कुक" के दफ़्तर से जाकर टिकट भी ले आयी। यह टिकट मारसलीज़ तक का रिटर्न था। मारसलीज़ मध्यसागर पर फ़रासीसी बन्दरगाह है। विलायत जानेवाले यहाँ उतर कर रेल से आगे जाते हैं। आने जाने का किराया ४५१ रुपये लगे। यह टिकट तीसरे दर्जे का था। टिकट से मालूम हुआ कि मेरे जहाज़ का नाम "डम्बिया" है और वह दूसरे दिन यानी दूसरी अक्टूबर को बम्बई से छूटेगा। उसी दिन मैंने गरम कपड़े और दूसरे जरूरी सामान सब खरीद लिये। जिस दिन जहाज छूटनेवाला था, हम लोग १० बजे घर से रवाना होकर बन्दरगाह पर आये। 'विक्टोरिया डक' पर हमें जहाज़ में चढ़ना था। मि० सिंडे मेरे साथ थे। पहिले एक लेडी-डाक्टर मेरी नाड़ी देखकर मुझे एक रुक्का दे गयी। जब मैं जहाज़ की सीढ़ियाँ चढ़ने लगी तो एक दूसरे डाक्टर ने जो वहाँ खड़ा था, उस रुक्के को देख कर ले लिया। जहाज़ के ऊपर पहुँचते ही एक अंग्रेज़ नौकर ने मुझे मेरा कमरा बता दिया। यह कमरा बहुत ही साफ़ और अच्छा था। उस कमरे में मेरे सिवाय दो मेमें

भी थीं। एक के साथ एक छोटा बालक भी था। कमरे में नौ आसन सोने के लिए थे। पर सोनेवाले हम चारही थे। पाँच खाली आसनों पर हम लोगों का असबाब रक्खा था। रोशनी जहाज़ में गैस की थी। हर तीसरे दिन इस कमरे व "बाथरूम" यानी नहाने के कमरे के तौलिये बदले जाते थे।

यहाँ किसी बात की तकलीफ़ नहीं थी। अगर कुछ थी तो खाने की। यहाँ पर अपने पसंद का खाना कुछ भी नहीं मिलता था। तरह तरह का मांस, जिसे खाना तो दूर रहा मैं देखना तक नहीं चाहती थी, मेज़ पर रक्खा जाता था। "डच चीज़" और दूसरे भी कई तरह के "चीज़"—जिन्हे पनीर समझना चाहिए—जिस समय लाकर मेज़ पर रक्खे जाते थे, उनकी गन्ध से मेरा सिर घूमने लगता था, यद्यपि यह अवश्य था कि जिसके जी में जो आवे वह खावे। पर इतना होने पर भी तकलीफ़ ही थी। दस दस आदमियों का झुण्ड एक साथ खाने बैठता था। ऊपर कहे हुए के अलावा भी और कई तरह के भोजन मेज़ पर आते थे। इनके बाबत मैं यहाँ पर कुछ नहीं लिखना चाहती, क्योंकि मुझे अपने देशी खाने के सामने इनमें से एक भी नहीं भाया।

तीसरे दर्जे में आधे तो अंगरेज़ और आधे हिन्दुस्तानी थे। मेरे पास ही 'डाइनिङ्ग-रूम' यानी खाना खाने का कमरा था। बस, खाना खाने के समय पचासों तरह के आदमी देखने में आते थे। मेरे बगल के कमरे में एक फरासीसी परिवार का निवास था। बम्बई छोड़ने के बाद चार दिन तक तो मैं बहुत अच्छी रही। पर पाँचवे दिन सिर में पीड़ा प्रतिदिन हो जाया करती थी। इस जहाज़ में मुझे एक तकलीफ़ और थी। यह एक फ्रेञ्च जहाज़ था। इसके सब नौकर-चाकर फ्रेञ्च ही बोलते जो मैं बिलकुल नहीं समझती थी। सिर्फ एक "स्टुयर्ड" ही थोड़ी बहुत अँगरेज़ी समझता था। इस कारण जब कभी मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता होती तो इशारों से समझाना पड़ता, या साथ की मेमों की शरण लेनी पड़ती।

बम्बई में मि० सिंडे ने, जिनके यहाँ मैं ठहरी थी, मेरी मुलाकात मि० कोटी से करा दी थी और कह दिया था कि वह जहाज़

मैं मेरी खबर लेते रहें। मि० कोटी एक सज्जन पुरुष हैं। मि० सिंडे के कथनानुसार वे रोज़ मेरे कमरे पर आकर पूछ जाते थे कि मुझे किसी बात की तकलीफ़ तो नहीं है। मि० कोटी के साथ एक और सज्जन थे जो मारसलीज़ में रह कर डाक्टरी पढ़ने के विचार से जा रहे थे। यह भी मेरी बड़ी खबर रखते थे। इनके साथ एक और लड़का था, जिसकी उमर १७ साल की होगी, जो सिविल सर्विस परीक्षा के लिए विलायत जा रहा था। यह भी कभी कभी मेरे कमरे में आता था। मेरे कमरे के पास ही एक और पारसी सज्जन थे जिनकी अवस्था ४० साल की होगी। इन्हें भी मि० सिंडे ने मेरी देख-भाल रखने को कह दिया था। इस तरह से चार तो देशी सज्जन और दो मेरे साथ की मेमें, इस जहाज़ में ६ आदमी मेरी सहायता करनेवाले थे। जब कभी मैं घबड़ाने लगती तो ये लोग मेरी घबड़ाहट दूर करने का प्रयत्न किया करते। कभी कभी मैं इन लोगों के साथ बात-चीत करके अपना समय बिताती थी और कभी ऊपर "डेक" पर चली जाती थी। वहाँ पर बैठ कर कुछ समय तक समुद्र की शोभा देखती हुई स्वच्छ वायु का सेवन करती थी। चार बजे उठ कर मैं "बाथ रूम" में जाती और गैस को कुछ तेज करके स्नान करती। स्नान करने के बाद अपने आसन पर आकर पाठ करती। मेरे पाठ कर चुकने तक मेरे साथ की दोनों मेमें सोया ही करती थीं। कहीं सात बजे वे उठतीं और "बाथ रूम" से लौट कर शृङ्गार इत्यादि करतीं।

जहाज़ पर रोगी की भी अच्छी तरह खबर ली जाती है। उसे किसी प्रकार की तकलीफ़ नहीं होने पाती। मेरे साथ की एक मेम को ज्वर आ गया। तुरंत डाक्टर ने आकर उसे देखा और नौकर के हाथ दवाई भेजवाई। डाक्टर जब तक वह मेम अच्छी न हुई दो बार रोज़ आकर रोगी को सँभाल जाते थे। इस जहाज़ पर "डेक पैसिंजर" भी थे। थोड़े से गुजराती थे जो एडन जा रहे थे। इन लोगों को बड़ी तकलीफ़ थी। ये लोग अपने पास से तो खाते थे, अपने ही बिछौनों पर सोते थे, और चाहे तूफ़ान आवे, चाहे पानी बरसे, इन्हें "डेक" पर ही रहना पड़ता था। "डेक" जहाज़ के उस भाग को कहते हैं जो खुला रहता है। ६ अक्टूबर को जहाज़ एडन पहुँचा। एडन अरब देश के दक्षिणी

किनारे पर है। हिन्दुस्तान से विलायत जानेवाले जहाज़ यहाँ पर कोयला लेकर तब लाल सागर में प्रवेश करते हैं। एडन अँगरेज़ी साम्राज्य के अधीन है।

जहाज़ "एडन" से आगे बढ़ा। दो तीन दिन तक तो मेरी तबियत बहुत ठीक रही। पर एक दिन जब मैं नहा रही थी, भूल से "बाथ रूम" की खिड़कियाँ खुली रह गयीं:जिससे मुझे सर्दी लग गयी और ज्वर आ गया। पहले दिन डाक्टर तीन बार देखने आया। इसके बाद चार दिन तक प्रतिदिन दो बार देखने आता रहा। कम्पाउण्डर दोनों वक़्त दवाई खिला जाता था और "टेम्परेचर" ले जाता था, अर्थात् "थर्मामिटर" लगा कर देख जाता था कि कितनी ज्वर की गर्मी है। खाने को मुझे दूध-भात मिलता। दाल फुलके के लिए बहुत ही जी चलता, पर दाल-फुलका यहाँ स्वप्न था। मेरी वे दोनों मेमें बड़ी खबर रखतीं। मुझे घबड़ाने नहीं देतीं। मेरे पास बैठ कर मेरा जी बहलाये रखतीं। जब जहाज़ "स्वेज़ कनाल" पार करके "पोर्ट-सैयद" से भी आगे निकल गया तब मेरी तबियत कुछ कुछ अच्छी होने लगी। १४ अक्टूबर को मैं बिलकुल अच्छी हो गयी। "स्वेज़-कनाल" १७६९ ई० में ज़मीन काट-करजहाज़ आने जाने के लिए बनाई गयी थी। यह लालसागर और मध्यसागर को जोड़ती है। यह ९९ मील लम्बी है। पोर्ट सैयद इसके दूसरे छोर पर है।

१७ अक्टूबर को जाहाज़ ने मारसलीज़ के बन्दर में लङ्गर डाला। यहाँ से पैरिस् तक मैंने तीसरे दर्जे में सफ़र किया। फ्रान्स की राजधानी पेरिस् से लण्डन तक मैं दूसरे दर्जे में गयी। पेरिस् से लण्डन तक के डेढ़ पाउन्ड अर्थात् २२॥ रुपये किराये के दिये। "पोर्ट सैयद" से मैंने लण्डन चिट्ठी भेज दी थी कि १९ अक्टूबर की रात को मैं लण्डन पहुँचूँगी। पर चिट्ठी में गाड़ी का नम्बर देना भूल गयी। इससे स्टेशन पर मेरे लेने के लिए कोई भी न आया। पहिले तो मैं बहुत घबड़ाई, पर मेरे साथियों ने मुझे धीरज बँधाया। मेरे साथ दो देशी सज्जन थे। इनमें से एक तो "कैम्ब्रिज" की गाड़ी में बैठ कर जो उसी समय जाने को तय्यार खड़ी थी, चले गये। दूसरे भी अपने किसी परिचित के घर जाने को तय्यार थे। पर मेरे कारण इन्हें रुक जाना पड़ा। जो सज्जन इन्हें लेने के

लिए आये थे उन्होंने मुझे भी साथ चलने के लिए कहा। पर जब मैं उनके घर जाने में राजी न हुई तो उन्होंने मुझे मेरे घर के पते पर छोड़ आने का वचन दिया। मैंने उनकी इस दया को धन्य-वाद के साथ स्वीकार कर लिया।

खैर! हम लोग स्टेशन से रवाना हुए। अपना असबाब तो उन्होंने अपने घर छोड़ा और "ट्यूब रेलवे" के रास्ते मेरे मकान के लिए रवाना हुए। यह रेलगाड़ियाँ ज़मीन के भीतर ही भीतर बड़ी बड़ी सुरङ्गो में चलती हैं। सुरङ्गो में बिजली की रोशनी रहती है। किसी तरह जी नहीं ऊबता। दो तीन स्टेशन तक जाने के बाद "ट्यूब" को छोड़ कर हम लोगों ने घोड़ा गाड़ी किराये की। कुछ दूर घोड़ा गाड़ी में सफर करके "केलीडोनियन रोड" में अपने घर के पते पर पहुँचे। पुकारने पर एक मेम ने दरवाज़ा खोला। मेरे साथियों ने उससे पूछा कि "क्या मि० सिंह यहीं रहते हैं?" जवाब में उसने कहा "हाँ! रहते तो यहीं हैं। पर उन्हें आज एक चिट्ठी मिली है जिसके मिलते ही वे कहीं बाहर चले गये हैं"। इतना कह कर उसने एक कमरा खोल दिया। वहीं हम सब लोग बैठ गये और उनके आने का रास्ता देखने लगे।

एक घंटे तक हम लोग रास्ता देखते रहे, पर कोई न आया। मैंने अपने साथियों से विनती की कि आप लोगों को मेरे कारण बहुत कष्ट उठाना पड़ा। इस दया के लिए मैं आपको धन्यवाद देती हूँ। आप कब तक इस तरह बैठे रहेंगे। अब कोई चिन्ता नहीं। वे आही जाँयगे। आप पता लिख कर देते जाँय। घर जाकर आप लोग भी अब विश्राम करें। पहले तो वे मुझे अकेली छोड़ने पर राज़ी न हुए, पर मेरे बहुत कहने सुनने से पता देकर वे लोग अपने घर गये। उनके जाने के कोई एक घंटे बाद स्वामी के दर्शन हुए। उन्हें जो चिट्ठी मिली थी मेरी ही थी। मुझको ही लेने वे स्टेशन गये थे। जब रात की सब गाड़ियाँ देख डालीं पर मेरा कहीं पता न चला तो हार कर घर लौट आये। इस तरह अपनी बिलखती हुई माता व अन्य बन्धु-बन्धाओं से बिछुड़ कर अपने शहर से अकेली चल कर, सुख दुःख से २२ दिन का रास्ता तै करके, विलायत के लण्डन शहर में मैं अपने स्वामी के चरणों तक पहुँची।

यहाँ आने पर कई दिन तक तो मैं घर से बाहर ही न निकली। एक तो सफ़र की थकान ने मुझे बहुत ही कमज़ोर कर दिया था,

दूसरे मेरे सब कपड़े देशी थे। देशी पोशाक में यहाँ एक साधारण आदमी का निकलना बड़ा कठिन है। क्योंकि देशी पोशाक को देख कर रास्ता चलनेवाले ठट्ठा करते हैं—तरह तरह की हँसी उड़ाते हैं। खैर! मैंने सब कपड़े तो मेमों के से बनवा लिए पर टोपी नहीं बनवाई। सिर पर रेशमी रुमाल बाधना ही अच्छा समझा'। क्योंकि सिख समाज में टोपी पहिनना मना है।

पहिले दिन हम "सेन्ट पाल्स-कैथेड्रल" नामक गिरजाघर देखने गये। यहाँ पर नामी नामी विलायती बहादुरों की मूर्त्तिएँ देखने में आयीं। ये मूर्त्तिएँ काले और सफेद पत्थर की बनी हैं। यह गिर्जाघर बहुत ही विशाल और भव्य, देखने योग्य इमारत है। देखने के बाद हम "ट्यूब रेलवे" में बैठ घर वापस आये। इस तरह की रेल का बयान मैं पहले कर चुकी हूँ। ऐसी रेलें यहाँ बहुत हैं। एक मील का किराया एक पेनी अर्थात् एक आना लगता है।

फिर एक दिन "जू" देखने गयी। वह बाग "जू" कहलाते हैं जिनमें तरह तरह की चिड़ियाँ, बन्दर, शेर इत्यादि देश-देशान्तर के पशु पक्षी पाले जाते हैं। इसके देखने का टिकट एक शिलिङ्ग अर्थात् बारह आने का मिलता है। पर देखनेवालों के सुभीते के लिए प्रति सोमवार को आधा टिकट कर दिया जाता है। मैं तो सबेरे से शाम तक देखते देखते थक गयी, पर पूरा न देख सकी। अनेक रङ्ग की चिड़ियाँ, कई तरह के बन्दर, शेर, भालू इत्यादि मैंने यहाँ पर देखे। खैर! जिनका देखना ही पूरा न हुआ उनके बारे में लिखा ही क्या जाय?

हमलोग अँगरेजी "एटीकेट"—अर्थात् वर्त्ताव—व सभ्यता की अपने देश में बड़ी प्रशंसा करते हैं। घर बैठे तो हमें यही समझ पड़ता है कि विलायत में एक भी असभ्य व मूर्ख न होगा। पर विलायत में आकर अपनी आँखों देखने से आँखें खुल जाती हैं। यहाँ का हाल देख कर यही कहना पड़ता है कि रद्दी असभ्य लोगों की यहाँ भी कमी नहीं है। एक दिन हम लोग ६ बजे शाम को घूमने निकले। बाज़ार में खूब रोशनी हो रही थी। पुस्तकालय होकर जब मुड़े तो एक ऐसे रास्ते होकर निकले जिस पर बहुत से अनाथालय थे। हम लोगों को देखते ही सब ओर से लड़के लड़कियों के झुंड के झुंड निकल पड़े। करीब पचास साठ के

इकट्ठे होकर—निगर, ब्लैक, निग्रोज़, डंकी, मंकी, बीस्ट की लगे ताने अलापने। बड़ी बड़ी लड़कियों ने मुझे घेर लिया और मेरे सिर पर हाथ रख रख के छेड़ने लगीं। इसी तरह पन्द्रह बीस मिनट तक इन्होंने बड़ी तकलीफ दी। रस्ता चल रहा है, लोग आ जा रहे हैं, पर इन्हें कोई हटाता न था। पुलिसमैन खड़ा देख रहा है, पर वह भी नहीं बोलता। हमलोगों की छतरियाँ भी इन्होंने तोड़ फाड़ कर अलग कर दीं। आखिर कोई चारा न देख कर इन्हें छेड़ने दिया, पर आगे बढ़ते गये। जब हमलोग बहुत दूर निकल गये तब कहीं इन लोगों ने पीछा छोड़ा। टोपी को छोड़ मैं सब तरह से विलायती पोशाक में थी। विलायती पोशाक में तो यह दशा हुई, अगर कहीं अपनी देशी पोशाक में होती तो फिर क्या था, लौट कर घर आना कठिन हो जाता॥ (अभी और है)

—रामशरण त्रिपाठी

सुनीति

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

(५)

दिननाथ जी अब अस्ताचल को चले गये। वह देखो सरोवरों में प्रफुल्लित विमल कमलों ने भी अब संपुट बाँध लिया है। बिचारे चक्रवाकों का विछोह देखिये—किसी ने कहा है—

"हेरि रह्यो दिन में बन व्याध जु साँझ समै चकवा युग पाये।
आपस में बतरान लगे कि बनी निशि मैं करिहैं मन भाये॥
पतिहिं माँहि बयारि बही छुटि आपने आपने पंथ सिधाये।
बंधहु में विधि मंद मिलाय सक्यो सहिना कहिकै मुरझाये॥"

कर्ता की लीला अपरम्पार है। सुनीति और ध्रुव दोनों चौखट पर खड़े हैं। आह भर कर सुनीति जी कह रही हैं—

"जो दिन हैं दुख के सुन रे सुत ता दिन होत न कोई सहाई।"

हे पुत्र! ऐसे दुःख के समय में सिवाय परमात्मा के और कोई सहायक नहीं होता है। उस सर्वशक्तिमान दयामय भगवान का स्मरण करो जिसने तुम्हारा गर्भावस्था में पालन किया। वही सब संसार का कर्ता है। वही कृपालु ईश्वर तुम्हारा दुःख दूर

करेगा और वही तुम्हारा यह फूट फूट कर रोना सुनेगा। प्रिय पुत्र! स्वयं भगवान ने नारद जी से कहा है कि—

"नाहं वसामि बैकुंठे योगिनाम् हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायंति तत्र तिष्ठामि नारद॥"

अर्थात् हे नारद, न तो मैं बैकुंठ में रहता हूँ और न योगियों के हृदय में। मेरे भक्त जहाँ पर मेरा भजन करते हैं मैं वहीं रहता हूँ। हे सुत, ईश्वर आराधना के तुल्य और कोई सुख इस जगत में नहीं है।

गज़ल

करिये भजन सुत ईश का जिसके जगत आधार है।
माता पिता कोई नहीं सब झूठ यह संसार है॥
कोई ऐसा है नहीं आनन्ददाता और तो।
जैसा हरदम जीव का वह सर्व सुख का सार है॥
दोस्त जोरू माल दौलत सब यहीं रह जायँगे।
दिल में सोचो तुम सभी ह्याँ कर्म का निर्धार है॥
वही जल में, वही थल में, वही सब में है सही।
वही कर्ता वही धर्ता वही पालनहार है॥
धर्म-चर्चा नियम संयम भक्ति होनी चाहिये।
लोक-निन्दा से बचे ये ही महेश विचार है॥

इससे सब छोड़ कर परमात्मा ही का स्मरण करो।

पाठिकाओ, स्मरण रखिये कि जब तक माता स्वयं सुशिक्षिता न होगी तब तक पुत्र की अच्छी शिक्षा कैसे हो सकती है? क्या आज कल की भी अशिक्षिता माताएँ ऐसी ही शिक्षा देतीं? कदापि नहीं। हमारी समझ में तो वह उठ कर लड़ने को दौड़ पड़तीं और कहतीं कि किस दुखिया ने मेरे बच्चे को मारा है?

अपनी माता की संतोषदायिनी वाणी सुन कर श्रीमान् राजकुमार ध्रुव जी को पूरा ज्ञान हो गया और वह समझ गये कि सचमुच भजन करने ही में सुख है और फिर माता की एक प्रकार से आज्ञा भी है जो सर्वथा माननीय है। उस समय ध्रुव जी को अपनी माता की कही हुई रामायण की यह बात याद आ गयी जो श्री रामचन्द्र जी ने कही थी—

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु पोषणहारा। दुर्लभ जननी यह संसारा॥

अब सबेरा होते ही ध्रुव जी चलने को तैयार हैं। बात यह है कि इस गृहस्थाश्रम में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि में पड़ कर ईश्वर आराधना होनी बहुत कठिन है, इसीलिए निर्जन वन में योग करने के लिए हमारे ५ वर्ष के कुमार ध्रुव जी अपनी प्यारी माता सुनीति जी से आज्ञा माँग रहे हैं।

ध्रुव जी—तो हे माता जी! वन जाने की अब आज्ञा दीजिए जिससे उस सुखदाता परमात्मा को जा कर ध्याऊँ और आपकी वाणि सफल करूँ।

सुनीति जी—हे पुत्र! अभी तुम्हारी छोटी उमर है। तुम योग करने योग्य नहीं हो। शीत, उष्ण, वर्षा का महान दुःख पाओगे। और,

भूख प्यास जब आनि सताई। केहि ते भोजन मँगिहौ जाई॥

इससे हे तात, यहीं रह कर ईश्वर का ध्यान करो।

ध्रुव—नहीं माता, अब तो अवश्य ही जाऊँगा। तुमने पहले क्यों मुझे ऐसी शिक्षा दी?

सु०—नहीं, अभी मत जाओ—

बार बार बलि जाउँ तनिक मैया तन हेरौ।
ऐसे दुःख में छाँड़ि अबै ध्रुव ना मन फेरौ॥
नहीं योग को ज्ञान नहीं सुमिरन को बल है।
छोटो सो तू काहु करैगा अबै निबल है॥
तेरो मुख अवलोकि जियत मैं हूँ नित प्यारे।
फिर तो छाती टूक होइ है रहे सु इतहोरे॥

ध्रुव जी—माता! तुम क्या अब अनसमझ बन गईं जो ऐसी बातें करने लगीं?

सुनीति ने जाना कि इसको अब पूरा वैराग्य उत्पन्न हो गया है, अब न मानेगा। तो चुप हो रहीं। क्या करतीं? अपने प्राण आधार सुत को यह कैसे कह सकती थीं कि जाओ। परन्तु समझने की बात है, कि ऐसे समय में धैर्य धारण करना वीर स्त्रियों ही का काम है। बहुधा स्त्रियाँ अधैर्य हुआ करती हैं। पर सुनीति जी वैसी न

थीं। मौनं सम्मति लक्षणम्। बस, ध्रुव जी ने जाना कि यह जाने को अपने मुँह से न कहेंगी, चप हो रहीं, मानो यह कहती हैं कि अच्छा जाओ। यह सोच कर माता के चरणों में शीश नवा कर ध्रुव जी चल पड़े। उस समय सुनीति जी के चित्त की गति अपने प्यारे पुत्र के—जिसके अवलम्ब से रहती थीं—वन चलने पर कैसी हुई होगी, यह पाठिकाएँ स्वयं विचार सकती हैं।

(६)

दिन ढाई घड़ी से अधिक चढ़ा होगा। अपने अपने घरों में देवियाँ घर गृहस्थी के काम काज कर रही हैं, किन्तु हमारी श्रीमती सुनीति जी पुत्र के विछोह से बड़े दुःख में पड़ी हैं। विचारी रो रही हैं और कुमार ध्रुव जी चले जा रहे हैं। एक सिपाही ने ध्रुव को जाते देख लिया और महाराजा उत्तानपाद से जाकर कहा।

सिपाही—हे महाराज! आपके कुमार ध्रुव जी वन में तपस्या करने जा रहे हैं।

राजा—क्यों?

सिपाही—अन्न न मिलने से दुःखी हो कर जाते होंगे।

राजा—तो जाकर उनसे कहो कि अब दो सेर मिलेगा, लौट चलो।

उसने ध्रुव जी को पुकार कर खड़ा किया और कहा कि अब आपको दो सेर अन्न मिलेगा, लौट चलिये। इस बात को सुन कर ध्रुव जी को और भी हौसला बढ़ा और वह कहने लगे—

"जेहि प्रभु कीन्ह सेर से दूना। ताके भवन और का सूना॥"

मैं अब नहीं लौट सकता।

उसने राजा से फिर जाकर कहा कि कुमार नहीं लौटते। महाराज ने कहा, अच्छा, एक गाँव दे दिया जायगा, कह दो लौट आवें। फिर सिपाही गया और कहने लगा, "आपको एक ग्राम दिया जायगा, लौट आइये"। परन्तु उन्होंने न माना। फिर सिपाही ने जाकर कहा कि वह नहीं मानते। तब महाराज ने पाँच ग्राम सुनाये। उसने ध्रुव जी से फिर भी कहा, परन्तु ध्रुव ने न माना और उनका चित्त और भी दृढ़ होता गया कि अब अभी केवल ईश्वर की

राह पर पैर ही रक्खा है तब तो इतना मिलने लगा, और भजन करूँगा तब न जाने क्या हो। अस्तु, अवश्य चलना चाहिए।

प्रिय पाठिकाओ! ऐसा कौन पिता होगा जिसको पुत्र पर प्रेम न हो। जब महाराज ने जाना कि यह यों नहीं मानेगा, तब स्वयं जाकर ध्रुव जी के पास गये और समझाने लगे।

राजा—हे तात! कहाँ जाते हो? लौट चलो। आधा राज्य लो और आनन्द करो। अभी तुम छोटे हो, वन के योग्य नहीं हो।

कुमार चरणों में गिर कर और हाथ जोड़ कर बोला, "हे पिता! प्रथम तो आपने भी मुझको संतोष न दिया था जब माता सुरुचि ने आपकी गोद से मुझे झटक कर गिराया था। अब मैं आधा राज्य लेकर ही क्या करूँगा?"

राजा—हे पुत्र! तुम बहुत छोटे हो, वन में कैसे रह सकोगे? 'भालु बाघ वृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरज भागा।' वन का स्मरण आते ही सारा शरीर काँपने लगता है, फिर वन का रहना तो महा कठिन है।

ध्रुव जी— हे पिता!

गर्भ माँहि रक्षा करी जहाँ हितू नहिं कोय।
अब का मोंहि न पालिहैं विपिन गये मँह सोय॥

जिस परमात्मा ने गर्भ में रक्षा की है, उसको वन में रक्षा करना कौन सी बड़ी बात है।

पाठिकाओ! यह सुशिक्षिता माता का ही प्रभाव है कि हमारे पाँच ही वर्ष के ध्रुव जी आज ऐसी ऐसी बातें करने में समर्थ हैं।

ध्रुव जी ने फिर पाँव पर गिर कर कहा, "हे पिता, इस चरण-सेवक पर सदैव कृपा रखना, भूलना नहीं। यह दास कभी फिर भी यदि जीता जागता रहा तो आपके चरणों में आ उपस्थित होगा। बस, अब निस्सन्देह ध्रुव जी चल दिये। मार्ग में जाते हुए उन्होंने एक साधु को देख कर साष्टांग दंडवत किया।

साधु— बच्चा तुम कौन हो? किस देश में रहते हो? तुम्हारे पिता का क्या नाम है और अकेले कहाँ जा रहे हो?

ध्रुव जी—महाराज जी! मैं आप लोगों का दास हूँ और मैंने इसी संसार में जन्म लिया है। पिता परमेश्वर है। फिर ऐसे

पिता के देश में अकेले घूमना क्या कठिन बात है ? आप बताइये कौन हैं ?

साधु—मेरा नाम नारद है, कदाचित् तुमने सुना भी हो ।

यह नाम सुनते ही ध्रुव जी बहुत प्रसन्न हुए क्योंकि सचमुच इनकी बड़ाई और नाम ध्रुव जी सुन चुके थे। तुरन्त ही फिर उनके पाँवों पर गिर पड़े और हाथ जोड़ कर कहा, महाराज! मैं लौकिक पिता राजा उत्तानपाद का पुत्र हूँ । आपके दर्शनों से कृतार्थ हो गया ।

नारद जी—तो पुत्र ! तुम कहाँ और क्यों जाते हो ?

ऐसा प्रश्न सुन कर कुमार ध्रुव जी सम्पूर्ण व्यवस्था वर्णन कर गये और कहा,

भलेहिं नाथ मिलि गये कृपा ईश्वर ने कीनी ।
तव दर्शन ते भई अधम यह देह नवीनी ॥
अब तौ शिक्षा देहु जौन बिधि मिलैं प्रभू मम ।
निज सेवक गनि लेहु आजु ते मोंहि स्वामि तुम ॥

नारद जी ने उससे यह सुन कर कहा, "बच्चा ! चलो, मैं तुम्हें राजा से मिला दूँ । अभी छोटे हो, बन जाने योग्य नहीं हो । लिखा है कि जब एक पुत्र उत्पन्न हो जाय तब उसको राज्य सौंप कर फिर राजा को वन जाने का अधिकार है ।

ध्रुव जी—स्वामी ! कदाचित् पुत्र पैदा होने तक यह शरीर ही न रहे तो फिर भजन करने को रह जायगा, इस लिए अभी से भजन कर लेना ठीक है, क्योंकि कहा है—

"कालिह करे सो आज कर आज करे सो अब ।
पल में परलै होयगी बहुरि करोगे कब ॥"

और "जिन्हें मानि चुके तिन्हें मानि चुके" । अब मैं उस पिता को छोड़ कर और फिर किसका स्मरण करूँ ?

नारद जी—तुम्हारा वन से लौट आना दुर्लभ है, क्योंकि वहाँ बड़े भयंकर जीव रहते हैं, कैसे निर्वाह होगा ? और फिर—

शीत, उष्ण, वर्षा दुख पैहौ ।
भूख लगी तब केहि गुहिरैहौ ॥

ध्रुव जी—सो प्रभु गयो कि सोय जो रच्छेउ जननी जठर ? हे स्वामी ! गर्भ में जिसने रक्षा की थी और पालन किया था, वह रक्षा करनेहारा क्या कहीं चला गया है ?

नारद जी मन ही मन ध्रुव की माता की प्रशंसा करने लगे कि धन्य है, ऐसी प्रशंसनीय संतान धर्मवती सुशिक्षिता माता के ही हो सकती है। जब बहुत समझा कर हार गये और जान लिया कि इसका दृढ़ विश्वास ईश्वर पर है तो मंत्र बता कर शिष्य किया और उपदेश करने लगे।

जाहु तात अब विपिन ईश आराधन कीजै।
नेम प्रेम दृढ़ धारि योग जापहि मन दीजै॥
देखि उग्र तप धाम विघ्न सुरगण करवैहैं।
धरि धरि बिबिध सरूप तुम्हारो मन भरमैहैं॥
डिगेहु न पै हम कहे देत तुम से यह प्यारे।
छिन भर करेहु न भूलि ईश को मन ते न्यारे॥

ऐसी ही अनेक प्रकार की शिक्षा देकर नारद जी ने राह ली और ध्रुव जी भी प्रणाम कर वन को सिधारे।

(७)

मधुवन निस्तब्ध है, बाघ सिंह आदि दहाड़ रहे हैं, मृग चौकड़ियाँ भरते हुए चले जा रहे हैं, नाना प्रकार के पक्षी बोल रहे हैं, अनेक प्रकार के वृक्षों की लताएँ दूर दूर तक घनी चली गई हैं। सूर्य देव कहीं छिपते हैं और कहीं प्रकट होते हैं। कहीं कहीं तपी हुई रेतीली जगहों पर अन्न का दाना पड़ते ही भुन जाता है। कहीं जलाशय का नाम ही नहीं। महा भयानक भयानक दृश्य देखने में आते हैं। किन्तु हमारे निर्भय ध्रुव जी, वह देखिये, एक पर्वत की शिला पर ध्यान में मगन बैठे घोर तप कर रहे हैं। दूसरे तीसरे दिन फलाहार कर लेते हैं। कुछ काल पश्चात् योंही निराहार ही रहे—

पाँव एक से ठाढ़ हाथ ऊँचो करि लीन्हों।
जगत पिता के ध्यान माँहि अतिशय मन दीन्हों॥
करत घोर तप लगे तहाँ ध्रुव निश्चय करिकै।
सबै जगत सुख त्यागि एक ईश्वर लय धरिकै॥

ऐसा तप देख कर इन्द्र काँपने और विघ्न करने पर उतारू हुए। परन्तु ध्रुव जी का ध्यान कुछ ऐसा वैसा थोड़ा ही था जो डिग जाता। एक बार एक माया-निपुण देवी को भेजा। उसने वहाँ जाकर उनकी माता सुनीति का रूप बनाया। भला कहाँ असल और कहाँ नकल! बहिनो! क्या कोई बनने से सुनीति हो सकता है? आचरण तो वैसे थे ही नहीँ। बनने से तो

उधरे अन्त न होइ निबाहू। काल नेमि जिमि रावण राहू॥

निदान केश छिटकारे, बिना आभूषण, रोती, सिर पीटती, हाय पुत्र, हाय पुत्र, कहती दौड़ी चली आती है। जब ध्रुव जी ने कुछ ध्यान न दिया तो कहने लगी, हाय, मुझे तुम्हारे चले आने पर राजा ने बहुत पिटवाया और निकाल दिया। कहा कि वहीं जा, जहाँ तेरा लड़का गया है

कहे सुने भटकै सब कोय।
कैसौ चतुर बुझक्कड़ होय॥

अस्तु ध्रुव जी ने आँख खोल कर देखा, परन्तु झट उनको नारद जी के वचन याद आ गये और सोचने लगे कि हमारी माता तो बड़ी समझदार हैँ, यदि उनको यहाँ आना होता तो मुझे ही क्यों ऐसा उपदेश देतीं? यह कोई अवश्य मायाविनी है। ऐसा सोच कर फिर ध्यान करने लगे और उसका प्रयत्न निष्फल हुआ। ऐसा उग्र तप देख कर भगवान स्वयं आकर उपस्थित हुए और बोले, "हे पुत्र! आँख खोल। मैं खड़ा हूँ। परन्तु वहाँ तो वायु जाना भी कठिन था, फिर आवाज़ कौन सुनता है? जब जाना कि यह ऐसे न जागेगा तो

"हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा। लखि ध्रुव चित्त हर्ष अति छावा॥"

और फिर उस हृदयवाले रूप को खींच लिया तब तो तुरन्त ही अकुला कर ध्रुव ने आँखें खोल दीं और दोनों हाथ जोड़ कर गदगद कंठ से स्तुति करने लगे—

दुष्ट-दलन मद-हरन जयति जय करुणा-सागर।
जय जय जय घनश्याम जयति जय वेद उजागर॥
पतितन करत पवित्र सदा यह बानि तिहारी।
दीन-बंधु जय जयति प्रभू सुखदानि बिहारी॥

सुररंजन भव-भार-हरन यह सदा विचारत।
जय निज जन को जानि दुःख सगरो हरि डारत॥
मोसो खल अघ भरो ताहि दर्शन दै दीन्हीं।
जय जय जय मम नाथ साँच मेरो प्रण कीन्हा॥
हौं बालक अति अज्ञ करौं किमि बिनै तुम्हारी।
तुमहीं हो पितु मातु जयति जय मम हितकारी॥

ऐसा कह कर इकटक देखते रह गये। भगवान ने प्रसन्न होकर कहा वरदान माँगो।

ध्रुव जी—हे प्रभु, आपकी भक्ति ही सर्वोत्तम है। मुझको अब संसारी सुख, जो देखने ही के हैं, न चाहिए।

भगवान—तो हमारी एक आज्ञा मानो कि कुछ दिन अभी राज्य करो, फिर हमारे धाम को आना।

ध्रुव—प्रभु, जो आज्ञा।

भगवान चक्रवर्ती राजा का सा वैभव वहाँ उपस्थित कर अन्तर्धान हो गये।

अब वही हमारे अनाथ कुमार ध्रुव जी आज सनाथ हो गये हैं। असीम सेना के साथ हाथी पर सवार अपनी जन्मभूमि को चले जा रहे हैं। मार्ग में जिसके राज्य से होकर जाते हैं वही राजा भेंट देकर मिलता है। ठीक है, जब किसी के दिन फिरते हैं तो ऐसा ही होता है। इसी प्रकार चलते हुए ध्रुव जी अपने राज्य की सीमा पर आ गये और वहाँ ठहर कर एक दूत द्वारा अपने आने का समाचार कहला भेजा। उसने जाकर सभा में निवेदन किया।

दूत—(सिर झुका कर) महाराज की जय हो।

राजा—कहाँ से और क्यों आये हो?

दू०—महाराज मुझे आपके पास आपके कुमार ध्रुव जी महाराज ने भेजा है कि मेरे आने की खबर मेरे पिता से कहो।

राजा—(आनन्द और आश्चर्य से) आये क्या? कहाँ?

दूत—श्रीमान के कुमार वन से आ गये हैं यही कहने को मैं आया हूँ।

राजा—क्या कहते हो? अरे, वह तो बहुत छोटी अवस्था में गया था। अब तो हाड़ भी न होंगे, फिर ध्रुव का शरीर? उसको तो जाते ही किसी वन-जन्तु ने खा लिया होगा।

दू०—महाराज, सत्य मानिये। उन्होंने बन में जाकर तपस्या की, और ईश्वर की कृपा से उनके बड़ा भारी वैभव हो गया है। अब आपके राज्य की सीमा पर पड़े हुए हैं।

इतने में राजा के दो चार दूतों ने भी आकर कहा कि, कोई बड़ा राजा राज की सीमा पर पड़ा है। यह सुन कर महाराज उत्तानपाद् को नारद के वचन स्मरण हो आये। क्योंकि नारद जी ध्रुव जी को वन भेज कर वहीं गये थे और राजा को दुःखित देख कर समझाया था कि आप चिन्ता न कीजिए, वह अवश्य लौट आवेंगे। बस, यह याद आते ही महाराज के मन में विश्वास हो गया। फिर क्या था, महाराज उत्तानपाद् को जो उस समय आनन्द हुआ वह कहा नहीं जा सकता। झटपट महलों में भी खबर दी और यह बात नगर भर में फैलते देर न लगी। सुनीति जी ने भी सुना। उस समय का हर्ष पाठिकाएं ही सोच सकती हैं। अति शीघ्रता से महाराज मिलने को चले। आगे आगे महाराज चले जाते थे और पीछे पालकी में दोनों रानियां और उनके पीछे पुरवासी थे। महारानी सुरुचि को इस समय बड़ी ग्लानि होने लगी। सत्य है, बिना बिचारे काम करनेवालों की यही दशा होती है। किसी ने कहा है—

बिना बिचारे जो करैं सो पाछे पछिताय।
काम बिगारे आपनो जग में होत हँसाय॥

हमारे राकुमार ध्रुव जी ने देखा कि पिता जी आते हैं तो झट दौड़ कर दंडवत की। महाराज ने पुत्र को हृदय से लगा लिया और नेत्रों से आँसुओं की धारा बहने लगी, शरीर में पुलकावली छा गयी। ध्रुव जी पहले माता सुरुचि से मिले और अनेक प्रकार समझा कर उनकी ग्लानि मिटायी। फिर अपनी माता सुनीति जी के चरणों पर गिरे और कहा, "हे माता! आपकी कृपा और आज्ञा से भगवान मिल गये और यह दास फिर सेवा में आकर उपस्थित हुआ।" माता सुनीति जी बेटे को गले से लगा कर बहुत रोयीं और उनके सिर पर हाथ फेरा। राजा उत्तानपाद महलों में लिवा लाये और उसी समय ध्रुव जी को राज्य सौंप आप वन में तपस्या करने चले गये। बहुत समय तक महाराजाधिराज श्रीमान् ध्रुव जी ने नीति से राज्य किया। और फिर एक पुत्र पैदा होने पर उसीको राज्य का भार सौंप कर आप भी वन में जा कर तपस्या करने लगे और

अन्त में बैकुंठ सिधारे और सदैव के लिए उनका यश अजर अमर हो गया।

प्यारी पाठिकाओ, इस कथा के सुनाने से मेरा यह प्रयोजन है कि आप लोग भी सुनीति धारण कीजिए और ध्रुव के समान पुत्र उत्पन्न कर संसार में उन्हींकी तरह अपना यश फैलाइये। वह भी भारत की ही माता थीं। भारतवर्षीय माताओं के लिए क्या ऐसा होना अब दुर्लभ है? कदापि नहीं॥ —महादेवप्रसाद

बालक की पसली चलना

प्यारी बहिनो, आज मैं आपको बच्चों के उस भयानक रोग का, कि जिस में फँस कर सौ में से कोई दस ही भाग्यवान बालक जीते बचते हैं, कुछ निदान और उपचार बताती हूँ।

संसार में जितने रोग हैं उनमें से अधिकतर पेट की खराबी ही से उत्पन्न होते हैं। इसीके अनुसार माता की बदपरहेज़ी से जब बालक का भी पेट खराब हो जाता है तो उसे खाँसी और बुखार या अकेली खाँसी ही हो जाती है और इसमें हवा या ठंड लगने के कारण बच्चे को श्वास लेने में कष्ट होने लगता है जिससे वह अधिक ज़ोर से साँस खींचने और रोने लगता है। इसे पसली चलने की पहली अवस्था समझनी चाहिये।

रोग के आरम्भ में ही यदि बच्चे की खाँसी या ज्वर की चिकित्सा भली प्रकार हो गयी तब तो खैर, नहीं तो जब उसकी गले की नली में कफ़ जम गया और श्वास लेने में छाती के नीचे गड्ढा पड़ने लगा तो फिर उसकी बड़ी भारी देख-रेख की आवश्यकता हो जाती है। इसमें संदेह नहीं कि जब बच्चे की ऐसी दशा हो जाय तो रोग कठिन अवश्य हो जाता है, किन्तु माता पिता को धैर्य रख कर सावधानी से उसकी सेवा में त्रुटि नहीं करनी चाहिए। क्योंकि ऐसी अवस्था को पहुंचे हुए बहुत से बालक अभी तक भली प्रकार जीते जागते मौजूद हैं।

इस रोग का जब संदेह हो तो सब से पहले बच्चे को हवा और ठंड से बहुत बचावे। दूसरे एक माशे या अधिक विलायती अंडी का तेल दूध में मिला कर उसे देवे जिससे पाँच छः दस्त खुल कर हो जावें; या केलोमिल, सोडा, अपीकाक और गैम्बाज नामी अंगरेज़ी दवाइयाँ समभाग मिला कर एक एक रत्ती दो दो घंटे के अन्तर से दे। इससे बच्चे को कय और दस्त होने लगेंगे और साँस ठिकाने आता जायगा। तीसरे उसके पेट पर तारपीन का तेल मल कर रुई बाँध दे, इससे उसका कष्ट कम होता जायगा।

इस पर भी यदि हठीला रोग भयानक हो जाय तो बहुत सावधानी से चिकित्सा करो। पहले कोठरी या कमरे को बन्द करके अच्छे कोयलों की अँगीठी पास रखो। कोठरी इतनी अधिक बन्द भी न होनी चाहिए कि जिसमें हवा के आने जाने की रुकावट हो। मतलब यही है कि ठंडी हवा न लगनी चाहिए।

योग्य वैद्य को बुलाओ। ऐसे समय में खरगोश का खून इस रोग के लिए बहुत ही लाभकारी है। लोग बहुधा इसको डिब्बी में रख छोड़ते हैं। यदि उस समय मिल सके तो दूध में थोड़ा सा घोल कर तुरन्त ही बच्चे को देवे। और थोड़ा सा मुसब्बर* बारीक पीस कर मुरगी के अंडे की जरदी में हल कर के पेट पर लेप कर दे तथा पसलियाँ भी खाली न रहें। किन्तु यह लेप दो घंटे से अधिक नहीं रखना चाहिए।

सतबन का फूल १ रत्ती काली मिरच १ रत्ती और गोरोचन १ रत्ती को थोड़े अर्क पोदीना में हल करके पिलाने से भी अधिक लाभ होता देखा गया है तथा अकेला गोरोचन भी माता के दूध में देना अधिक गुणकारी है। काले मुसब्बर को बरांडी शराब में पका कर बहुधा पसलियों पर लेप करने से भी फ़ायदा होता है।

बच्चे के इस रोग में ग्रस्त होने से जो जो कष्ट माता पिता को उठाने पड़ते हैं उनको वे ही बेचारे जानते हैं। इस लिए माताओं को उचित है कि अपने खाने पीने में बहुत सावधान रहें तथा बच्चे

* काले मुसब्बर के मानी एलुआ के हैं।

को सदैव हवा और ठंड से बचावें, तथा नित्य प्रति यह भी देख लिया करें कि बच्चे को दस्त खुल कर साफ़ हुआ है या नहीं। यदि न हुआ हो तो तुरन्त घूँटी दें और बारम्बार या जल्दी जल्दी उसे कभी दूध न पिलावें।

अन्त में निवेदन यह है कि सब कुछ यत्न और उपचार करते हुए भी उस परम पिता जगदाधार परमेश्वर की विनती करनी चाहिए कि वह इस भयानक दुष्ट रोग से बच्चे को हर प्रकार रक्षा करें।　　—लक्ष्मीनारायण गुप्त की धर्मपत्नी

देवी भाग्यवती

पाठिकाओ! आज मैं तुम्हें एक ऐसी तुम्हारी देश-बहिन का जीवनवृत्तान्त सुनाता हूँ कि जिसे पढ़ कर तुम स्वयम् ही समझ लोगी कि वास्तव में आज भी भारत में जननी जन्मभूमि का सिर ऊंचा करनेवाली देवियाँ वर्त्तमान हैं।

श्रीमती भाग्यवती का जन्म संवत १६४६ के श्रावण मास में अलीगढ़ के कोठीवाल लाला गिरवरलाल जी के यहाँ हुआ था। जन्म के तीन ही वर्ष पश्चात् इनकी माता का देहान्त हो गया। तब से पिता ही ने अत्यन्त प्रेम के होते हुए भी इनकी शिक्षा में कोई कसर न रख इनको हर तरह के स्त्रियों के योग्य गुण सिखलाये।

बारह वर्ष की आयु में जब कि और लड़कियाँ केवल खेलना कूदना ही जानती हैं, उन्होंने स्त्रियों के सारे कर्म धर्म सीख लिये थे। ईश्वर की कृपा से रूप-लावण्य में भी हजारों में एक ही थीं। इन सबके उपरान्त एक विशेषता यह थी कि धर्म और भक्ति का रस विधाता ने कूट कूट कर शरीर में भर दिया था।

शिक्षा समाप्त होने पर इनके पिता ने अपने एक मात्र सुहृद् और सिकंदराराऊ के प्रसिद्ध ज़मींदार लाला तुलसीप्रसाद जी के सुयोग्य कनिष्ठ पुत्र बाबू विश्वम्भरसहाय जी के साथ इनको विवाह दिया। गौने के पश्चात् ईश्वर ने एक सुन्दर पुत्र इन्हें दे दिया।

सास का तो देवलोक पहिले ही हो चुका था। अब पुत्र होने के एक ही वर्ष उपरान्त एकाएक फ़ालिज से लाला तुलसीप्रसाद भी सुरपुर सिधार गये। तथा इस बन्धु वियोग के दुसह दुःख को न सह कर उधर लाला गिरवरलाल भी मित्रता का अपूर्व दृष्टान्त दिखा कर उन्हीं के पास जा पहुंचे। इस प्रकार से अचानक बेचारी भाग्यवती के सिर दोनों गृहस्थियों का भार आ पड़ा।

सत्रह वर्ष की आयु में गृहस्थी के सारे झगड़ों को उन्होंने इस अच्छी तरह सुलझाया कि सुननेवाले आश्चर्य करने लगे। इन सब बातों के होते हुए भी उन्होंने पति-भक्ति और अपने नित्य नियम तथा परहित को कभी स्वप्न में भी नहीं बिसारा। गृहस्थी के बड़े भारी खर्च होने पर भी उन्होंने तीन चार ब्राह्मण तथा वैश्य कन्याओं के विवाह अपने खर्च से किये और वास्तव में अपने अन्त समय तक उन्हें अपने पेट की कन्याओं ही के भाँति समझा। हवन और गायत्री के जप से उन्हें बेहद प्रेम था। सारांश यह कि बस्ती के तथा ज़मींदारी के सबही लोग उनके कृतज्ञ हो गये, क्योंकि वह गुप्त-भाव से सैकड़ों दीन दुखियों की सहायता करती थीं।

गत अगहन मास में ईश्वर ने इन्हें एक पुत्र और भी दे दिया, किन्तु शोक है कि तब ही रोग ने उन्हें आ घेरा और बुखार खाँसी ने ज्यादातर सताना आरम्भ कर दिया। बड़े लाला खूबलाल जी ने हज़ारों रुपये हकीम मेमों और डाक्टरों में खरचे, किन्तु किसीके किये कुछ न हुआ और कुटिल काल ने सदैव के लिए उस स्वर्ण-प्रतिमा को सारे प्रियजनों से छीन कर अचानक अँधेरे में छिपा दिया और वैश्य कुल का, नहीं—नहीं—सारी बस्ती का गौरव धूल में मिला दिया। आज जहाँ देखो उसीकी चर्चा है, उसीकी प्रशंसा है और उसीका गुणानुवाद है।

अन्त समय उन्होंने अपने पति को बुलाया और कहा, "मेरे पास कई स्त्रियों की थाती और गहने जमा हैं, उनका हिसाब भी वहीं अलमारी में है सो सबको बुला कर दे देना, मेरे 'नवीन' को न भूलना; प्यारे अब बिदा..............."। बस, इतना कह आँखें बन्द कर लीं।

पाठिकाओ, आपने देखा कि आज वही एक २२ वर्ष की सच्ची आर्यबाला नहीं है, किन्तु यहाँ पर चारों ओर उसकी कीर्ति है। वास्तव में ऐसी ही देवियों के कारण आज भी सारे संसार में

प्यारे भारत का सिर ऊँचा है। आओ, हम सब मिल कर उनकी आत्मा की शान्ति के लिए ईश्वर से विनय करें और यह भी प्रार्थना करें कि "हे प्रभु! अब घर घर ऐसी ही देवियों को उत्पन्न कीजिए जिससे एक बार फिर भारत उन्नति-शिखर पर पहुंच जाय"॥

—लक्ष्मीनारायण गुप्त

समालोचना

प्रियंवदा

[लेखक श्रीयुत गिरिजाकुमार घोष। प्रकाशक 'माडर्न प्रेस', इलाहाबाद। मूल्य आठ आना।]

जिन लोगों ने श्रीयुत गिरिजा बाबू की दूसरी पुस्तकों को पढ़ा है उनसे आपकी लेख-कुशलता का परिचय हम नये सिरे से क्या दें? हिन्दी साहित्य का कौन ऐसा प्रेमी होगा जो बाबू साहब की 'गृहिणी' और 'छोटी बहू' से प्रेम न रखता होगा? आख्यायिका लिखने में हिन्दी जगत् में बहुत दिनों तक अपना नाम छिपाये रखने पर भी बाबू साहब ने अच्छा यश पाया है। इधर स्त्री-साहित्य में भी आप बहुत ही अच्छा काम कर रहे हैं। प्रियंवदा नाम के नये उपन्यास ने भी गिरिजा बाबू ही की सरस लेखनी से जन्म पाया है। प्रियंवदा भी स्त्री-पाठ्य है, करुण रस से परिपूर्ण है। इसमें हिन्दू समाज का एक सच्चा चित्र खींचा गया है। विधवा नारी विद्या और सुशिक्षा के कारण सांसारिक लालसाओं पर जय पाकर सच्चे परोपकार-रूपी ब्रह्मचर्य धर्म का पालन कहाँ तक कर सकती है, इस पुस्तक में यही बात प्रधानतः दिखायी गयी है। साथ ही साथ सच्चे महात्माओं की कृपा से पुरुष ही नहीं, स्त्रियाँ—हिन्दू स्त्रियाँ—भी आध्यात्मिक विमलानन्द को पा सकती हैं, इस बात की भी झलक इस पुस्तक में पायी जाती है। हम तो यही कहेंगे कि उपन्यास पढ़ना हो, स्त्रियों को उपन्यास पढ़ाना हो तो 'छोटी बहू' और 'प्रियंवदा' की श्रेणी के उपन्यास ही पढ़ने पढ़ाने योग्य हैं। इनके पढ़नेवाले के मन में एक स्थायी निर्मल उपदेश की चाँदनी भर जाती है। हमें पूर्ण आशा है कि 'प्रियंवदा' को भी लेखक की दूसरी पुस्तकों की भाँति सब जगह आदर मिलेगा॥